४७४९
१८-३-६२

नये जीवन की ओर

—[illegible] प्रवृत्तियों का सिंहावलोकन—

लेखक

शिवचंद्र दत्ता

विमला दत्ता

प्रकाशक
मार्तण्ड उपाध्याय
मंत्री, सस्ता साहित्य मंडल,
नई दिल्ली

यूनेस्को के सहयोग से

पहली बार : १९५९
मूल्य
एक रुपया

मुद्रक
नेशनल प्रिंटिंग वर्क्स
(दि टाइम्स ऑफ इंडिया प्रेस),
१० दरियागंज दिल्ली

बीकानेर

प्रकाशकीय

किसी भी देश की सबसे मूल्यवान संपत्ति वहा के निवासी होते हैं। बिना देशवासियों के उत्थान के किसी भी राष्ट्र का, भले ही वह छोटा हो या बडा, अभ्युदय संभव नही है। आजादी के बाद से हमारे देश में सरकारी तथा गैर-सरकारी स्तर पर जो योजनाएं चल रही हैं, उनका अंतिम लक्ष्य यहा के कोटि-कोटि निवासियों का हित-साधन ही है।

प्रस्तुत पुस्तक में बताया गया है कि बच्चों तथा स्त्रियों के लाभ के लिए, विशेषकर उन बच्चों और स्त्रियों के लिए, जो शारीरिक दृष्टि से असमर्थ और सामाजिक दृष्टि से उपेक्षित हैं, विभिन्न स्थानों पर क्या-क्या काम हो रहा है और उनके जीवन को उपयोगी और स्वावलंबी बनाने के लिए क्या-क्या उपाय किये जा रहे हैं।

वस्तुत यह समस्या बड़ी ही व्यापक है, क्योंकि वह करोड़ों व्यक्तियों के जीवन से संबंधित है। उसे हल करने के लिए भगीरथ-प्रयत्न की आवश्यकता है। इस दिशा में अबतक जो काम हुआ है और हो रहा है, उसका अपना महत्व है, लेकिन इसमें कोई संदेह नही कि जबतक जन-सामान्य का सहयोग नही मिलेगा, वह पूरी तरह से पार नही पड सकेगा।

इस पुस्तक की सामग्री से पता चलता है कि इस काम का कितना महत्व है और कितनी उसकी आवश्यकता है। हमें विश्वास है कि इस पुस्तक को पढ़कर इस काम के प्रति लोक-रुचि को जाग्रत करने में सहायता मिलेगी।

—मंत्री

प्र
म
मं
न

विषय-सूची

	पृ
१. शिशु-गृह	[illegible]
२. बाल-गृह	१
३. बच्चों का पार्क	२
४. पाठशाला	२
५. अनाथाश्रम	४
६. बाल-सुधार-गृह	४
७. विकलांगों का स्कूल	६
८. अंध-विद्यालय	६
९. गूंगे बहरों का स्कूल	७
१० परित्यक्त शिशु-गृह	८
११. अविवाहित माता-गृह	८
१२. नारी-निकेतन	९
१३. उपसंहार	१०

शिशु-गृह

उस दिन जब मैं दफ्तर जाने के लिए पड़ोसिन के यहां घर की चाबी देने गई तो देखा, शान्ति बहुत झुंझलाई हुई थी। कुछ परेशान-सी भी थी। मुझे दफ्तर को देर हो रही थी, फिर भी पड़ोसिन से हैरानी का कारण पूछे बिना न रह सकी। "क्यों शान्ति क्या बात है? मुन्ना रो रहा है, तुम्हारा चेहरा उतरा हुआ है! क्या तबीयत ठीक नहीं है?"

शान्ति की आंखों में आंसू छलक आये। बड़ी कठिनाई से उन्हें रोकती हुई बोली, "क्या करूं बहन, वे दौरे पर गये हुए हैं। नौकर एक महीने की छुट्टी पर है। नया आदमी ठीक मिला नहीं। माताजी को रात में बड़े जोर का बुखार चढ़ा हुआ है। सारी रात उनके हाथ-पांव दबाती रही। अब डाक्टर से दवा लानी है। घर का काम करना है। छोटा मुन्ना रोए चला जा रहा है। उसे नौकर ने गोदी की इतनी आदत डाल दी कि जान मुसीबत में आ गई है। उधर मुन्नी कभी रसोई में घुस जाती है तो डर लगता है कि कहीं अंगीठी न गिरा दे। वहां से भगाती हूं तो नल खोलकर सारे कपड़े भिगो लेती है। वहां से हटाकर कपड़े बदलती हूं तो बाहर गली में भाग जाती है। दिल कांपता रहता है कि कहीं

वह साइकिल के नीचे न आ जाये, कोई गाय सींग न मार दे। क्या करूं ? बच्चे न हो गये, एक मुसीबत हो गई ?"

कहते-कहते शांति के गालों पर आंसू ढुलक आये। अंदर से माताजी के कराहने की आवाज सुनाई दी। शांति ने मुन्ने को गोदी में लेकर हिलाना शुरू किया तो रसोई से सब्जी जल जाने की बास आने लगी। मैंने झपटकर चूल्हे पर से सब्जी उतारी। वापस घर जाकर ताला खोला। दफ्तर को फोन किया कि दो घंटे देर से आऊंगी। फिर शांति के पास गई, बच्चे को अपनी गोद में लिया और कहा—

"आखिर मैं तो दूर नहीं थी। सवेरे जरा मुझे आवाज लगा देती! वे ही माताजी की दवा ला देते। पड़ोसियों को इतना पराया तो मत समझा करो। मैं मुन्ने-मुन्नी को संभालती हूं। तुम जल्दी से काम निबटाकर तैयार हो जाओ, फिर आज तुम्हें शिशु-घर ले चलूंगी।"

"शिशु-घर ? वह क्या है ? कहां है ? उसमें क्या होता है ? मुझे मरने की भी फुर्सत नहीं है। तुम मुझे इधर-उधर ले जाने की सोच रही हो !"

मुझे उसके इस भोलेपन पर हँसी आ गई। मैंने कहा, "घबराओ नहीं। मैं इस समय तुम्हें सैर-सपाटा कराने की नहीं सोच रही। तुम्हारे भले की ही सोच रही हूं, जिससे ये प्यारे-प्यारे नन्हे-मुन्हे तुम्हारे लिए मुसीबत न बनकर आनंद और सुख की चीज बनें। आजकल ऐसे बहुत-से शिशुगृह खुल गये हैं, जहां माताएं जरूरत पड़ने पर अपनी सुविधा के लिए बच्चों को छोड़ आती हैं।"

"अच्छा ! वहां क्या होता है ?" शांति ने अचरज से पूछा।

मैंने जवाब दिया, "वहां शिशुओं को रखा जाता है। तुम जब चाहो अपना बच्चा वहां छोड़ आओ और काम निबटा कर जब चाहो, बच्चे को वहां से ले आओ। जैसे आज तुम्हें घर में इतना काम है—डाक्टर के जाना है, पता नहीं वहां कितनी देर बैठना पड़ जाय, फिर बाजार का भी काम है—तो तुम बड़े आराम से इस छोटे मुन्ने को वहां छोड़ सकती हो।"

शांति ने कहा, "यह सब तुम क्या कह रही हो! गोदी के दूध-पीते बच्चे को मां के सिवा कोई कैसे रख सकता है? नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। तुम्हारा मतलब बड़े बच्चों से होगा।"

"नहीं, मेरा मतलब गोद के दूध-पीते बच्चों से ही है। एक मास से लेकर दो-ढाई साल तक के बच्चे।"

आश्चर्य में शांति मेरी ओर देखती रह गई। बोली, "विश्वास नहीं होता।"

"हाथ कंगन को आरसी क्या?" मैंने कहा, "तो चलो, आज चलकर सबकुछ अपनी आंखों से देख लो।"

"वहां बच्चों के सोने और कपड़ों का क्या होता है?" शांति ने पूछा।

मैंने बताया, "वहां छः महीने तक के बच्चों के लिए सोने और खेलने के लिए पालने और बिछौने हैं। घुटनों चलनेवाले या इससे बड़े बच्चे नीचे दरी पर चलने-फिरने, खेलने-कूदने और गिरने-पड़ते हैं। शिशु-गृह में तुमसे अच्छी देखभाल होती है। तुम्हारे घर में धूप नहीं आती, पर शिशु-गृह ऐसे घरों में बसाया जाता है, जहां खुली हवा और धूप हो।"

शांति—"ये सब सुविधाएं तो हम बच्चों को दे ही नहीं पाते।"

मैं—"बहन, तुम क्या, बहुतों के यहां यही हाल है। तभी तो, आजकल शहर के बच्चे खुली हवा और धूप की कमी के कारण तंदुरुस्त नहीं रह पाते।"

शांति—"क्या वहां बच्चों के लिए खेल-खिलौने भी होते हैं?"

मैं—"क्यों नहीं। खिलौने सब प्रकार के होते हैं। बच्चा नये-

छः महीने तक के बच्चे पालनों में तथा घुटनों चलने वाले बच्चे दरियों पर खेलते हुए।

नये खिलौने देखकर झट बहल जाता है।" वहां झूलनेवाला घोड़ा, साइकिल, चाबीवाले खिलौने, कई रंगोंवाले मोतियों की लड़िया, बड़े-छोटे गिलास। इसमें बच्चे का मन खूब लगा रहता है। खेल-खेल में बड़ी-छोटी चीजों में भेद करना सीख जाता है, भिन्न-भिन्न रंगों को पहचान जाता है।

कुछ-कुछ गिनती की धारणा भी हो जाती है।"

शांति—"लेकिन बहन ! इन खिलौनों का लाभ तो बडे बच्चे ही उठा पाते होंगे।"

मैं—"हा, इस प्रकार के खिलौने दो-ढाई साल के बच्चों के लिए अधिक उपयोगी होते है। छोटे बच्चे तो इनके रगों से ही आकर्षित होकर इन्हे हाथ मे उठाकर खुश हो जाते है। मुह से काटते है और किलकारिया मारते है। उनसे भी छोटी आयु के बच्चो के लिए भिन्न-भिन्न रगो के रबड और प्लास्टिक के तरह-तरह के झुनझुने, जानवर इत्यादि होते है।"

शांति—"बहन, इतने खिलौने जुटानेभर पैसा तो हमारे पास उमरभर नही होंगे। हमारे बच्चे तो हमेशा ललचाये-ललचाये ही रहते है। अच्छा एक बात और बताओ। अगर बच्चा टट्टी-पेशाब कर दे तो ?"

मैं—"कर दे तो क्या हुआ ? बच्चो का तो काम ही है यह। जो बच्चे पालता है, वह इसका भी प्रबध करता है, कोई उन्हे गंदे थोडे ही छोड दिया जाता है। आया तत्काल उनके कपडे बदलकर धो देती है।"

शांति—"बच्चो को भूख लगे तो ?"

मैं—"उसके लिए दूध और बिस्कुट की व्यवस्था रहती है।"

शांति—"वहा का दूध, पता नही, कैसा हो ?"

मैं—"तुम अपने घर का दूध भी दे सकती हो। समय होने पर वे उसे गर्म करके पिला देगे। यदि वही का दूध पिलवाओगी तो वे दूध के अलग पैसे ले लेगे।"

शांति—"क्यों बहन, इस देखभाल के लिए वे कुछ लेते भी तो होंगे ?"

मैं—"ये घंटे के हिसाब से कुछ लेते हैं। कहीं कम, कहीं ज्यादा। पर सरकारी, और नगरपालिका की ओर से खोले हुए शिशु-गृहों में बहुत कम खर्च आता है।"

शांति—"यदि किसी बच्चे के पेट में दर्द हो जाय या दस्त लग जाय तो?"

मैं—"उसके लिए वहां डाक्टर और नर्स का भी प्रबंध होता है। बीमार बच्चे की डाक्टर भली प्रकार जांच कर लेता है। औषधि बताता है, और यदि कोई बच्चा कमजोर हो तो उसे शक्तिवर्द्धक औषधि भी देता है। नर्स समय पर औषधि दे देती है। अब बताओ, तुम्हें इससे अधिक और क्या चाहिए?"

यह सब सुनकर शांति का चेहरा प्रसन्नता से चमक उठा। बोली, "वाह हमारे देश में अब इतना सब होने लगा। कितने आनंद की बात है। तब तो मैं जरूर छोटे मुन्ने को शिशु-गृह में छोड़ आऊंगी।"

इतने में भीतर से झिड़कते हुए आवाज आई, "हां-हां, जब मेरी अरथी निकल जाय तभी इन दुधमुंहे बच्चों को बाहर छोड़ियो। जबतक मैं जिंदा हूं तबतक तो तू इन्हें कहीं ले नहीं जा सकती। यहां मां का प्यार छोड़कर वे उन भंगिनों के हाथ पड़ेंगे। तेरी अकल ऐसी क्यों मारी गई कि जो उसने कह दिया वही तूने मान लिया। वह सारे दिन उड़ी-उड़ी फिरे है, इसीलिए तुझे भी उड़ाना चाहती है। मां का फरज तू क्यों टालना चाहवे है।"

यह आवाज सास की थी। उसे सुनकर शांति की सिट्टी गुम हो गई। वह तो सोच रही थी कि बच्चे को शिशु-गृह में [illegible] देने से उसे कुछ राहत मिल जायगी, लेकिन सास [illegible] ऐसा रुख है तो वह कैसे संभव होगा। उसने बड़ी कातर

दृष्टि से मेरी ओर देखा, मानों सहारा चाहती हो। मैंने माताजी के पास जाकर हँसकर कहा, "क्या हो गया, माताजी ? जरा सोचो तो कि बेचारी शांति अकेले क्या-क्या करेगी ? पहले तो तुम भी बराबर काम में हाथ बटाया करती थी। अब तुम्हारे हिस्से के काम के साथ-साथ तुम्हारी सेवा और डाक्टर के चक्कर उसके सिर और आ गये हैं।"

इतना कहकर मैंने धीरे-धीरे माताजी के पाव दबाना शुरू कर दिया। मेरे इस व्यवहार से उनका स्वर कुछ नरम पड गया। बोली—"मुझे नहीं चाहिए दवाई-ववाई। मैं वैसे ही ठीक हो जाऊंगी, पर तू ही सोच, भला मा जैसा प्यार और कोई दे सकता है ? यहा तो मा का प्यार पाकर ही बच्चे फूलकर कुप्पा हो जाते हैं। इसी प्रकार हमारे बाप-दादा पले। इसी प्रकार हम पले और इसी प्रकार हमने अपने बच्चे पाले। पर यह नये जमाने की हवा हमे तो कुछ जची नही कि पैदा कर-करके बच्चे दूसरो के सिर डाल दिये जाय।"

मैं—"लेकिन माजी, हम तो तुम्हे बिना दवा के नही छोड सकते जमाना बडी तेजी बदल रहा है। जो जमाने के साथ नही चलेगा, वह

[illegible]

मैं—"नहीं-नहीं, माजी, भला यह भी कोई भूलने की बात है। अच्छा शांति, तैयार हो न।"

शांति—"हां, तैयार हूं।

मैं और शांति शिशु-गृह में जाकर वहां का सारा प्रबंध देख आये। शांति वहां के तौर-तरीकों से, मुस्काती सफेदपोश नर्सों से, चमचमाते कमरों से, खेल-खिलौनों, पालनों में खाने के प्रबंध से अत्यन्त सन्तुष्ट हुई।

पीछे रह जायगा, दुःख पायगा। तुम मा की ममता की बात करती हो। वह हर स्त्री के हृदय में भरी रहती है। हृदय तो सभी स्त्रियों का कोमल होता है। प्रकृति ने ही उनमें ममता और माया भरकर भेजा है। फिर एक बात और भी है, मांजी।"

मांजी—"वह क्या ?"

मैं—"आजकल ऐसे-ऐसे स्कूल खुले हुए हैं जहां स्त्रियों को शिशु-पालन की शिक्षा दी जाती है, जैसे एक बगलौर में है।

"इन कक्षाओं में स्त्रियों को यह और अच्छी तरह सिखा देते हैं कि बच्चों को कैसे प्यार से और खेल-खिलौनों से वश में किया जाता है। किस तरह उन्हें नहलाया जाता है, कैसा कपड़ा पहनाया जाता है और छोटी-मोटी बीमारियों में क्या किया जाता है।"

मांजी—"सचमुच ? क्या यो बातें भी आजकल पढ़ाई जाती है ?"

मैं—"हां, मांजी, सीखी हुई स्त्रियों को इन शिशुगृहों में काम पर लगा दिया जाता है। इतने पर भी उनके ऊपर के अधिकारी बीच-बीच में देखभाल के लिए आते-जाते रहते हैं।"

मांजी—"अच्छा, ऐसा है तब तो सच्ची वहां बच्चों का अच्छा प्रबंध होगा। जब मैं अच्छी हो जाऊं तो एक दिन मुझे भी ले चलियो वहां।"

मैं—"जरूर मांजी। जब सबकुछ अपनी आंख से देख लोगी तो तुम्हें संतोष हो जायगा। अच्छा, अब तो शांति को लिवा जाऊं न ?"

मांजी—"हां-हां, ले जाओ, लेकिन एक दिन मुझे भी जरूर दिखाना होगा। भूलियो नही।"

मैं—"नही-नहीं, माजी, भला यह भी कोई भूलने की बात है। अच्छा शाति, तैयार हो न।"

शाति—"हा, तैयार हूं।

मैं और शाति शिशु-गृह मे जाकर वहा का सारा प्रबंध देख आये। शाति वहा के तौर-तरीको से, मुस्कराती सफेदपोश नर्सों से, चमचमाते कमरो से, खेल-खिलौनो, पालनो मे खाने के प्रबंध से अत्यत सतुष्ट हुई।

: २ :

वाल-गृह

दूसरे दिन सवेरे ही शाति ने सबसे पहला काम यह किया कि मुन्ने के कपडे और दूध साथ लेकर उसे शिशु-गृह छोड आई, ताकि वाकी काम शाति से कर सके। पिछले दिन उसे अनुभव हो गया था कि जितनी अच्छी और सुदर देखभाल उसके मुन्ने की वहा हो सकती है, ऐसी वह स्वयं नही कर सकती। उसने निश्चय किया कि अव वह रोज मुन्ने को वहीं छोड़ आया करेगी। अव मुन्नी की कुछ व्यवस्था करनी थी। इसलिए मैंने जल्दी ही उसे वाल-गृह ले जाने का कार्यक्रम वनाया।

जव हम वाल-गृह पहुचे तो वहां की संचालिका ने मधुर मुस्कान के साथ हमारा स्वागत किया। हमने उनसे अपना वाल-गृह दिखाने की प्रार्थना की। उन्होंने वड़ी नम्रता से उसे स्वीकार कर लिया। हमने अंदर प्रवेश किया तो चारों ओर की हरियाली और फूलों की सुगंध से जी प्रसन्न हो गया। वाग में वच्चों के खेलने के लिए काफी खुली जगह थी। वहां कुछ वच्चे झूले पर सवार थे, एक नर्स उन्हे धीरे-धीरे झोंटे दे रही थी। कुछ सी सा (Sea-saw) पर चढे हुए थे और ऊपर-नीचे होकर आनंद ले रहे थे। कुछ सीढियों से फिसलनी पर चढकर टीन के टेढे तथा फिसलने रास्ते से नीचे की ओर सरक रहे थे। नीचे रेत की कुंड थी। इसलिए सरपटे से नीचे आने में उन्हे किसी प्रकार की चोट नही लग सकती थी। अभ्यास हो जाने से उनमें आत्म-विश्वास पैदा हो गया था।

इसलिए वे निडर होकर बार-बार ऊपर चढ़ते थे और नीचे फिसल जाते थे। कुछ एक चक्कर पर पांव का तनिक जोर लगाते ही ऊपर चढ़ जाते थे, उनके पांव के जोर से चक्कर घूमने लगता था और वे आनंद से किलकारियां मारने लगते थे। वहा इसी प्रकार के और भी बहुत-से खेल थे। बच्चों को किसीकी देखभाल की आवश्यकता न थी। वे अपने आप ललचाई आखो से खेलो की ओर भागते और झट खेलने लगते। शाति की मुन्नी ने दूसरे बच्चों को खेलते देखा तो उसकी उंगली छोडकर भागने का प्रयास करने लगी, पर शाति बोली, "नही बेटी, गिर जायगी।"

नर्स ने मुस्कराकर कहा, "छोड दीजिये बहनजी, उसे। चोट-चोट कुछ नही आ सकती।"

यह कहकर नर्स ने उसे ले जाकर एक डोलनेवाली कुर्सी पर बिठा दिया और एक दूसरे बच्चे को उसके सामनेवाली कुर्सी पर। फिर हाथ से एक कुर्सी को जरा-सा नीचे को दबा दिया। झट कुर्सिया ऊपर-नीचे होने लगी। फिर क्या था, मुन्नी उसपर से उतारे नही उतरती थी।

मैंने कहा—"शाति, इसे खेलने दो। हम जाकर बाकी की और चीजे देख लें। तबतक यह खेल मे लगी रही तो तुम इसे आज ही यहा दाखिल करा देना।"

शाति ने उसे झिझकते हुए छोड तो दिया, पर बार-बार मुड-मुडकर उसे देखने लगी। लेकिन मुन्नी को अपनी मा की जरा भी चिंता न थी। वह तो खेलों में खो गई थी।

बाग के दूसरे कोने में एक नर्स बच्चो को कतार में खडा करके दौड़ लगवा रही थी। कुछ बच्चे खडे होकर ड्रिल कर रहे थे। उनमे जो सबमे बड़ा था, वह सामने खड़ा होकर ड्रिल के आदेश दे रहा था।

रहा था, उल्टे आनंद आ रहा था। वहां कक्षा में इन मालाओं के अतिरिक्त गिनती याद करने के और भी कई खेल रखे थे।

वहां से हम दूसरी कक्षा मे गये। इस कक्षा मे बच्चे तरह-तरह के रंग-बिरंग प्लासटिक, लकडी, रबड़ इत्यादि के खिलौनों मे खेल रहे थे। कोई प्लासटिक लेकर तरह-तरह की आकृतिया बना रहा था, कोई लकडी के टुकडों से तस्वीरे बना रहा था, कोई लकडी के अक्षरों को जोड-जोडकर शब्द बना रहा था। इसी तरह सब अपने-अपने खेलो मे मगन थे।

अगले कक्ष मे कुछ बच्चे एक शिक्षिका के पीछे-पीछे एक कविता गा रहे थे। गाते जाते और हाथ और मुह से सकेत करते जाते। शिक्षिका की नकल करने मे उन्हे बडा मजा आ रहा था।

इतने मे घंटी बजी और सब बच्चे अपने-अपने स्थान मे पलथी मारकर बैठ गये। एक आया एक ट्रे मे बहुत-से दूध के गिलास ले आई। एक दूसरी आया बहुत-सी तश्तरिया ले आई, जिनमें केले और बिस्कुट रखे थे। शिक्षिका ने एक-एक गिलास दूध और केला हर बच्चे को दे दिया। सब बच्चो ने केले खा-खाकार छिलके उसी तश्तरी मे रख दिये और अपने-आप उठ-उठकर खाली गिलास और तश्तरी ट्रे में रख आये।

हम वहा से बाहर आ गये। देखा, शिक्षिका मुन्नी का हाथ पकड़े हमारी ओर ही आ रही थी। और बच्चो के साथ उसे भी दूध और केला मिल गया था। पेट भर जाने से वह बडी खुश थी और केले को कसकर हाथ मे पकडे हुए थी। अपनी मा को देखते ही बोली, "मां, देतो तेला।"

शांति को आशा न थी कि उसकी मुन्नी उसके बिना इतनी देर तक रह जायगी। अब जब उसको हँसते पाया तो उसे आज ही

वहा से आगे बढे तो एक कक्षा मे बच्चे गिनती बोल रहे थे। सबके हाथो में सौ-सौ दानों की एक-एक माला थी। एक-एक रंग के दस-दस दाने थे। बच्चे गिनती बोलते जाते और हर संख्या पर एक दाना खिसकाते जाते थे। उन्हे यह अनुभव नही हो रहा था कि उन्हें गिनती सिखाई जा रही है, पर मुह के बोल के साथ-साथ दाने के ऊपर हाथ जो चलता था, उससे उन्हे एक विचित्र ताल का आभास होता और इस ताल के जोर से उनकी जिह्वा और हाथ स्वत: ही चल रहे थे। हर दस गोलियों के पश्चात गोलियों का रग पलट जाने से नयापन मालूम होता, आगे बढ़ने की खुशी होती। गिनती रटने में मस्तिष्क पर जो जोर पडता है, वह तो पड़ ही नही

बच्चे व्यायाम करते हुए

रहा था, उल्टे आनंद आ रहा था। वहां कक्षा मे इन मालाओं के अतिरिक्त गिनती याद करने के और भी कई खेल रखे थे।

वहां से हम दूसरी कक्षा में गये। इस कक्षा मे बच्चे तरह-तरह के रंग-बिरंगे प्लासटिक, लकडी, रबड इत्यादि के खिलौनो में खेल रहे थे। कोई प्लासटिक लेकर तरह-तरह की आकृतिया बना रहा था, कोई लकड़ी के टुकडों से तस्वीरें बना रहा था, कोई लकडी के अक्षरो को जोड-जोडकर शब्द बना रहा था। इसी तरह सब अपने-अपने खेलो मे मगन थे।

अगले कक्ष मे कुछ बच्चे एक शिक्षिका के पीछे-पीछे एक कविता गा रहे थे। गाते जाते और हाथ और मुह से सकेत करते जाते। शिक्षिका की नकल करने मे उन्हे बडा मजा आ रहा था।

इतने मे घटी बजी और सब बच्चे अपने-अपने स्थान मे पलथी मारकर बैठ गये। एक आया एक ट्रे में बहुत-से दूध के गिलास ले आई। एक दूसरी आया बहुत-सी तश्तरिया ले आई, जिनमे केले और बिस्कुट रखे थे। शिक्षिका ने एक-एक गिलास दूध और केला हर बच्चे को दे दिया। सब बच्चों ने केले खा-खाकर छिलके उसी तश्तरी मे रख दिये और अपने-आप उठ-उठकर खाली गिलास और तश्तरी ट्रे मे रख आये।

हम वहा से बाहर आ गये। देखा, शिक्षिका मुन्नी का हाथ पकड़े हमारी ओर ही आ रही थी। और बच्चो के साथ उसे भी दूध और केला मिल गया था। पेट भर जाने से वह बड़ी खुश थी और केले को कसकर हाथ में पकडे हुए थी। अपनी मा को देखते ही बोली, "मा, देतो तेला।"

शाति को आशा न थी कि उसकी मुन्नी उसके बिना इतनी देर तक रह जायगी। अब जब उसको हँसते पाया तो उसे आज ही

दाखिल कराने का विचार किया। अत: हम संचालिका के कक्ष की ओर बढ़े। मार्ग में देखा, एक आया छोटे-छोटे बच्चों को टट्टी-

शिक्षिका की नकल करने में बच्चे बड़े कुशल होते हैं

पेशाब करवाने एक कोने में ले जा रही थी। कुछ बच्चियां अपने आप निवृत्त होकर अपने नाड़े बांध रही थी। उन्होंने यहा आकर नाड़े बांधना और यथा-स्थान पेशाब करना अच्छी तरह सीख लिया था। जो बच्चे छोटे और नये थे, उनको आया सहायता देती थी।

इतने में हम संचालिका के कक्ष में पहुच गये। शांति ने उनसे कहा—"क्या मैं एक-दो बातें पूछ सकती हू?"

संचालिका—"बड़ी खुशी से।"

शांति—"यहां कम-से-कम और अधिक-से-अधिक किस आयु के बालक भर्ती किये जाते हैं ?"

संचालिका—"दो वर्ष से लेकर पांच वर्ष तक के। शिशु-गृह की आयु से बड़े और पाठशाला में जाने योग्य आयु से छोटे।"

शांति—"आपके यहां बच्चों को स्वस्थ रखने के लिए क्या-क्या उपाय किये जाते हैं ?"

संचालिका—"यहां प्रति मास डाक्टर आकर प्रत्येक बच्चे की जांच करता है, उनका गला, आंख, कान, नाक, पेट देखता है और वजन भी लेता है। जो बच्चे बीमार होते हैं, उन्हें दवाई देता है और जो कमजोर होते हैं उन्हें बलवर्द्धक औषधियां देता है। जिस बच्चे को अधिक देखभाल की जरूरत होती है, उसे डाक्टर प्रतिदिन देखता है।"

शांति—"यह तो बहुत अच्छा प्रबंध है। खाने के लिए इन्हें प्रतिदिन दूध-केला ही मिलता है या कुछ और भी ?"

संचालिका—"हम मौसम का हरेक फल बारी-बारी से बच्चे को खिलाते हैं। इसका खर्चा अंतर्राष्ट्रीय बाल-सहायता कोष से आता है। इसलिए गरीब बच्चों के मां-बाप पर इसका भार नहीं पड़ता।"

शांति—"इसके लिए सामान क्या-क्या लेना होगा ?"

संचालिका—"सामान ! सब उसे यहीं से मिलेगा।"

शांति—"अच्छा ! इसे कितने बजे लाऊं ?"

संचालिका—"हमारा बाल-गृह प्रातः ८ बजे से १२ बजे तक लगता है। सिर्फ चार घंटे के लिए। शीत-काल में १० बजे से २ बजे तक।"

शांति—"ठीक है। तो मैं कल ८ बजे इन्हें यहां छोड़ जाऊंगी।"

× × ×

बाहर आते समय शांति मुझसे बोली, "बहन, तुम्हारी कृपा से बच्चों की इतनी अच्छी व्यवस्था हो गई। अब इतनी देर बाद मुन्नी को शिशुगृह से लाया करूंगी तो घर में रौनक हो जाया ...गी।"

मैं—"जी हां। रौनक तो हो ही जाया करेगी। जब ये बच्चे ...-छः घंटे तुमसे अलग रहकर मिलेंगे तो मिलने पर तुम्हारा ...न भी प्रसन्न हो उठेगा और उनको भी खुशी होगी। तब बालक ...हें मुर्झाये नहीं लगेंगे।"

शांति—"बहन, मोहन को जब मैंने स्कूल में भरती कराया तो उसने एक महीने तक धरती-आसमान एक कर दिये थे। ...ब रोता था जाते समय। रोज पिटता था। मुझे बड़ा बुरा लगता ...। सवेरा होते ही घर में रोना-पीटना शुरू हो जाता था। पर ... बच्चों को तो देखो। रोने का नाम भी नहीं।"

मैं—"हां शांति, यहां उन्हें खेल-खिलौनों से बहलाया जाता ... इससे उन्हें मां-बाप से अलग रहने की आदत हो जाती है। ...ं, आया और फिर बाद में अध्यापक व अध्यापिकाओं से डर ...ो लगता। पहले से ही गिनती सीखने और अक्षर बनाने का ...क हो जाता है, इसलिए बाद में पढ़ाई से बच्चा भागता ...े, बल्कि स्कूल न जाने से वह बहुत उदास हो जाता है। ... अब चलें। शाम को भेंट होगी। नमस्ते।"

: ३ :

बच्चों का पार्क

एक दिन शाम को घर लौटी तो देखा गली में खूब तू-तू मैं-मैं हो रही है और ऊंच-नीच कही-सुनी जा रही है। कोई किसी की नही सुनती, अपनी ही कहती है। गोदी के बच्चे अपनी माताओं को इस प्रकार लड़ते देखकर सहम गये और डर के मारे चिल्ला-चिल्लाकर रोने लगे। अपनी-अपनी औरतो की सहायता के लिए घर की बाकी औरतें और बच्चे भी निकल आये। सबका शोर मिलकर ऐसा लग रहा था मानो कोई तूफान आ गया हो। मैं दिनभर की थकी, घर आकर भी शांति नही। जल्दी-जल्दी चारों ओर के दरवाजे बंद किये, ताकि कान तो फूटने से बचे। कुछ ही देर मे गली के मर्द भी दफ्तरो से लौट आये। जो तमाशा देखने बाहर खड़ी थी, वे उनकी सूरत देखते ही चाय-पानी तैयार करने भीतर भागी, जो लड़ रही थी, उनमे से कुछ तो अपने आदमियो की घुड़कियां खाकर ही घर में घुस गई, कुछको उनके आदमियों ने धक्का मार-मारकर घर मे खदेड़ा।

जब सब शोर-शराबा अच्छी तरह से शांत हो गया तो नौकर से पूछने पर मालूम हुआ कि गली में कुछ बच्चे क्रिकेट खेल रहे थे। पतली-सी गली तो है ही, गेंद खिलाड़ियो से चूककर एक की खिडकी में जा लगी। खिडकी का शीशा टूट गया और एक टुकड़ा उछलकर कमरे मे बैठी स्त्री की आंख में जा लगा। बस फिर क्या था ? उसने आव देखा न ताव। बाहर आकर बच्चों को

पड़ते हैं। वह तो झगड़कर फिर आपस में मिल जाते हैं, पर उनके मा-बापों के दिल में बात बैठ जाती है और सभी पीठ-पीछे एक-दूसरे की बुराइयां करते रहते हैं।

ऐसे झगड़ों में भी बच्चों के अंदर झगड़ालू आदतें पक्की होती जाती हैं।

बच्चे झगड़कर फिर आपस में मिल जाते हैं।

दूसरे दिन शाम तक मैं इन्हीं झगड़ों से बचने का उपाय सोचती रही। अचानक मेरे मन में एक विचार कौंधा। शाम को आफिस से लौटते समय मैंने पार्क के भाईसाहब से पूछा, "आपका आगामी फिल्म-शो कब हो रहा है?"

भाईसाहब ने कहा—"इसी रविवार को।"

मैं—"अच्छा, उस फिल्म में यदि मैं अपने गली के पंद्रह-बीस बच्चों को बुला लाऊं तो नियम-विरुद्ध तो नहीं है?"

भाईसाहब—"नहीं-नहीं, जरूर लाइये, बड़ी खुशी से लाइये। हम तो चाहते ही हैं कि हमारे पार्क में अधिक-से-अधिक बच्चे सम्मिलित हों। हमारे कार्यक्रमों का ज्यादा-से-ज्यादा बच्चे लाभ उठावें।"

मैं—"आपके पार्क में कितनी से कितनी उम्र तक के बच्चे प्रवेश पा सकते हैं?"

4746

भाईसाहब—"[illegible]।"

मैं—"क्या [illegible] भी करते हैं ?"

भाईसाहब—"जी हां, [illegible]।"

मैं—"पार्क कितने बजे से कितने बजे तक खुलता है ?"

भाईसाहब—"गर्मियों में ६ बजे से ८ बजे तक, जाड़ों में ४ से ६ बजे तक।"

मैं—"पार्क को आपने बहुत अच्छा रखा है। इन पार्कों को किसकी ओर से बनाया गया है ?"

भाईसाहब—"हमारा यह पार्क तो नागरिक बाल-कल्याण समिति ने खोल रखा है।"

मैं—"नगर में क्या और पार्क भी हैं ?"

भाईसाहब—"जी हां, बहुत हैं। हमारे नगर में लगभग पन्द्रह-बीस पार्क होंगे।"

मैं—"क्या सभी आपकी समिति ने खोल रखे हैं ?"

भाईसाहब—"नहीं भाईजी, कुछ पार्क हमारी समिति ने खोले हैं, कुछ नगरपालिका ने, कुछ ऐच्छिक संस्थाओं ने, कुछ सरकार ने।"

मैं—"क्या आप पार्क के अतिरिक्त कहीं और भी जाते हैं ?"

भाईसाहब—"जी हां, बच्चों का शौक पूरा करने के लिए छुट्टी के दिन उन्हें कहीं बाहर ले जाते हैं। कभी किसी रमणीक स्थान पर दिनभर की पिकनिक कर लेते हैं, कभी ऐतिहासिक स्थान पर ले जाते हैं और वहां की खासियत बताते हैं। कुछ खान-पान कराते हैं, खेल-कूद कराते हैं और घर आ

जाते हैं। उससे उनका ज्ञान भी बढ़ता है और मनोरंजन भी हो जाता है।

मैं—"और कहीं भी ले जाते हैं या सिर्फ दर्शनीय और मनोरम स्थानों में ही?"

भ.ईसाहब—"जीहां, बच्चों के लाभ के जहां कहीं भी कार्यक्रम होते हैं, वहीं ले जाते हैं। बच्चों की फिल्म हुई या प्रदर्शनी हुई या कोई बाल-दिवस का कार्यक्रम हुआ, तो वहीं हम बच्चों को ले जाते हैं। आने-जाने का खर्चा बच्चे ही देते हैं। यदि लंबा कार्यक्रम हुआ तो समिति की ओर से उन्हें कुछ जलपान करा दिया जाता है।"

मैं—"यह तो बहुत अच्छी बात है। ऐसे बच्चों को, जिनके मां-बापों को घुमाने-फिराने का समय नहीं मिलता, आपकी सहायता से बहुत-कुछ देखने-सुनने को मिल जाता है।"

भाईसाहब—"जीहां, यही नहीं, हम तो उन्हें देश के नेताओं से भी भेंट कराने ले जाते हैं। जैसे नेहरूजी के जन्म-दिवस पर उनके घर जाकर बधाई दे आते हैं। राजेंद्रबाबू के जन्म-दिवस पर राष्ट्रपति-भवन चले जाते हैं। इस प्रकार बच्चे बहुत निकट से उनसे भेंट कर लेते हैं।"

मैं—"वाह, यह तो बहुत बढ़िया बात है। क्लब (पार्क) के बिना ऐसे अवसर कितने बच्चों को मिल सकते हैं!"

भाईसाहब—"रविवार के दिन रेडियो पर बच्चों के प्रोग्राम में भी ले जाते हैं।"

मैं—"आपके ये प्रयत्न तो सचमुच सराहनीय हैं।"

भाईसाहब—"गर्मियों के दिनों में हम कभी-कभी उन्हें 'बच्चों के तालाब' पर ले जाते हैं। वहां बच्चे पानी में तैरते हैं,

नहाते हैं। इससे उनका पानी का डर दूर हो जाता है, तैरना हो जाता है, साथ ही व्यायाम भी।"

बच्चों को नहाना बहुत पसंद है

मैं—"अच्छा, आमतौर पर रोज क्या-क्या होता है?"

[illegible]—"रोज ये बच्चे एक-डेढ़ घंटे आराम में मिल

कर खेलते हैं—जैसे वालीबाल, फुटबाल, लगडी-टाग-दौड, कबड्डी इत्यादि।"

मैं—"और बाकी समय में ?"

भाईसाहब—"हाजिरी होती है। कहानिया, पहेलिया, ज्ञान की बाते, चुटकुले, इत्यादि होते हैं। ये हम बच्चो से ही कहलवाते है। कोई कहानी सुनाता है, कोई चुटकला सुनाता है। कोई सवाल पूछता है। बच्चे उसका उत्तर देते है, और जिस बच्चे के उत्तर सबसे अधिक ठीक होते हैं उसे कुछ इनाम भी दे देते हैं, जैसे टाफी, बिस्कुट, कापी, पैन्सिल, पेन, रूमाल इत्यादि।"

मैं—"और जो कमजोर हो या बीमारी से उठे हो, या जो जल्दी थक जाते हो, उनके लिए भी कोई खेल है ?"

भाईसाहब—"जीहा, उनके लिए कैरम, ल्यूडो, हॉर्सरेस, व्यापार, ड्राफ इत्यादि कई प्रकार के खेल होते हैं।"

मैं—"अच्छा, और कोई सुविधा ?"

भाईसाहब—"जीहा, हमारा अपना पुस्तकालय है।"

मैं—"यह तो बहुत अच्छा है।"

भाईसाहब—"हम अपने बालको में से एक प्रधान, एक मत्री, एक पुस्तकालय-अध्यक्ष चुन लेते हैं। मत्री खेलो की देखभाल करता है। पुस्तकालय-अध्यक्ष किताबो की और प्रधान बाकी सब बातो की।

मैं—"कितनी पुस्तकें है उसमे ?"

भाईसाहब—"लगभग ढाई सौ।"

मैं—"पुस्तकें किस प्रकार की होती है ?"

भाईसाहब—"ज्यादातर कहानियो की। बच्चो की पत्रिकाए भी मगाते है। कुछ साप्ताहिक, कुछ मासिक। बच्चे सप्ताह में एक

४

[illegible]

[illegible]

[illegible] हुमायूं के मकबरे [illegible]

[illegible]

मैंने कहा, "क्या हुमायूं के मकबरे क्यों ले जा रहे हैं? [illegible] क्या कोई खास बात है?"

रमेश—"नहीं अम्मा, ऐसा खास तो कोई नहीं है। आज हमने अपने इतिहास की पुस्तक में हुमायूं और बाबर के बारे में पढ़ा था। इसीलिए वे हमें हुमायूं का मकबरा दिखाने ले जा रहे हैं। अम्मा, हमारे मास्टरसाहब बड़े अच्छे हैं। हम बराबर कुछ-न-कुछ दिखाते रहते हैं। पिछले शनिवार को हमें दिल्ली की मस्जिद

दिखाने ले गये थे। अब अगर परीक्षा म दिल्ली की मंडियों के बारे में सवाल आयेगा तो मैं सारा लिख दूंगा। मुझे बड़ी अच्छी तरह से याद हो गया है कि अनाज की मंडी कहां-कहा है और सब्जी की मंडियां कहा-कहां हैं?"

मैं—"भई, फिर तो तुम्हें खूब सैर-सपाटा करने को मिलता है। इतनी सैर तो हमने भी कभी नहीं की।"

शिशिर—(जो सातवी में पढता है)—"क्यों, जब तुम स्कूल में पढ़ती थी तो घूमने नहीं जाती थी?"

मैं—"नहीं बेटा, हमारे समय में ये सब बातें नहीं थी। हम तो सारे समय स्कूल में बंद रहते थे। सबकुछ किताबों से ही रटते थे और रटने के कारण जल्दी ही सब भूल भी जाते थे। पर अब शिक्षा-शास्त्रियों ने यह सिद्धांत निकाला है कि आंखों-देखी बात बच्चा आसानी से नहीं भूलता। इसलिए उसे अब घुमा-

कक्षा में पढ़ते हुए

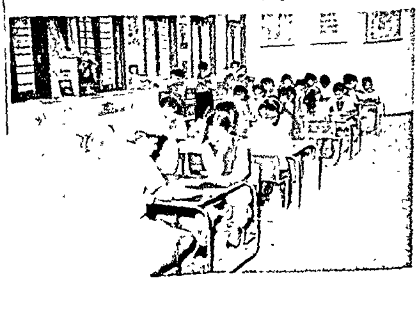

फिराकर सबकुछ समझाया और पढाया जाता है । घूमने से उसका मनोरंजन भी हो जाता है।"

शिशिर—"हा अम्मा, यह बात तो हमें भी अनुभव होती है। पिछले से पिछले शनिवार को स्कूल मे एक फिल्म दिखाई गई थी। उसमे सारे रोग, उनके लक्षण, उनके कारण और उपचार बताये गये थे। वे सब मुझे ऐसे याद हो गये कि कुछ न पूछो।"

मैं—"हां बेटा, आजकल शिक्षा की नई-नई प्रणालिया निकाली जा रही है। उनमे बच्चे के न तो मस्तिष्क पर जोर पडता है और न उसे पढना एक बोझ लगता है।"

शरत्—(जो छठी मे पढता है)—"अम्मा, अब तो हमारे स्कूल में एक रेडियो भी लग गया है। जब कोई विशेष महत्व की तिथि आती है तो रेडियो का सारा विशद कार्यक्रम हमे सुनाया जाता है। नाटक, कहानी, भाषण आदि से हमें वह तिथि और उस तिथि से सबधित ऐतिहासिक घटना आदि का पता चल जाता है। मास्टरसाहब उस दिन की ऐतिहासिक घटना से सबधित चित्र भी कमरे में टाग देते हैं। वे सारी चीजें मन पर गहरी अकित हो जाती है।"

मैं—"हा बेटा, मारकोनी नाम के आदमी ने रेडियो का आविष्कार करके सचमुच विश्व का बहुत भला किया है। हम जब स्कूल में पढते थे उस समय स्कूल की बात तो दूर, किसी के घर में भी रेडियो नही था। अच्छा, हेमत, तुम्हें और कुछ तो नही चाहिए?"

हेमत—"मुझे वहातक आने-जाने के पैसे चाहिए।"

मैं—"और खाने के लिए?"

हेमन्त—"खाने के लिए स्कूल मे मिलेगा। अम्मा, बडा मजा आयगा।"

मैं—"अच्छा शिशिर, तुम्हें क्या चाहिए ?"

शिशिर—"अम्मा, हमारा स्कूल पूजा की छुट्टियों में बच्चों को लंका तक ले जा रहा है। सवासौ रुपये लगेंगे। अम्मा, मुझे जाने दोगी ? बड़ी अच्छी हो, अम्मा। तुमने ही तो कहा था कि देश-पर्यटन से साधारण ज्ञान बहुत बढ़ता है। अम्मा···"

मैं—"अरे, तो घबराता क्यों है ? मैंने तुझे जाने के लिए मना कब किया है। पर पूरी बात तो बता, कौन-कौन जायगा, कहा-कहा जायंगे, वहां खाने-पीने का क्या प्रबंध हुआ है ?"

शिशिर—"दिल्ली के सब स्कूलों के लिए रेलवे ने भाड़े में रियायत दी है। जहां-जहा जायंगे, वहां-वहा स्कूलों में ठहरने का प्रबध कर दिया गया है। वहा के स्कूलों की बसें हमें घुमायें-फिरायगी। खाने-पीने की व्यवस्था भी स्कूलों में हो गई है। हर दस लडकों की देखभाल के लिए एक मास्टर साथ मे जायगा।"

मैं—"अच्छा, तो सवासौ रुपये में खाली घूमना-फिरना है, या और भी कुछ ?"

शिशिर—"नही अम्मा, और कुछ नही। इसीमें रेल का किराया, खाना-पीना और घूमना-फिरना, सबकुछ आ जाता है।

"वापस आकर यात्रा का सारा हाल लिखकर दिखाना होगा। स्कूलवालों ने पहले ही यात्रा के सर्वोत्तम विवरण पर पुरस्कार बोल रखा है। सब स्कूलों में जो सबसे अच्छा लेख होगा, उसे पचास रुपये का पुरस्कार मिलेगा, द्वितीय को पच्चीस रुपये का।"

मैं—"यह बहुत अच्छा किया।"

शरत—"अम्मा, एक बात बताओगी ?"

मैं—"क्या ?"

शान्त—"जो गरीब हैं सवासौ रुपये नहीं खर्च कर सकते, वे कैसे घूम-फिर सकते हैं ?"

मैं—"सरकार ने इस वर्ष से एक ऐसी योजना बनाई है कि गरीब बच्चे भी बारी-बारी से पहाड़ों पर गर्मियों की छुट्टियों में

बाल-सभा

दो मास बिता सकेंगे । सरकार उन्हें सारा खर्चा देगी । उनके लिए गरम कपड़े, बिस्तर, खाना-पीना सबकी व्यवस्था करेगी। दो महीने उन्हें पर्याप्त बलवर्द्धक भोजन कराया जायगा, ताकि उनके शरीर की सारी कमी पूरी हो जाय।"

शिशिर—"अच्छा, उन्हें यह कैसे पता चलेगा कि कौन इतना गरीब है कि उसे ले जाय और किसे नहीं।"

मैं—"गांव का समाज-सेवक जिसकी सिफारिश करेगा, उसीको ले जायंगे।"

शिशिर—"और शहरों में ?"

मैं—"यह योजना शहर के बच्चों के लिए नहीं है।"

शिशिर—"वहां रहने के लिए क्या प्रबंध होगा ?"

मैं—"वहां जो सरकारी कार्यालयों के भवन खाली पड़े हैं, उन्हें इसी काम के लिए इस्तेमाल किया जायगा।"

शरद—"तो इसका अर्थ है कि अमीर-गरीब सभी इन योजनाओं से लाभ उठा सकेंगे।"

मैं—"हां, सब योजनाएं ऐसी ही बनाई जाती हैं, जिनसे सब कोई लाभ उठा सकें।"

शरद—"हर बार एक ही जगह ले जाते हैं या अलग-अलग स्थानों की यात्रा कराते हैं ?"

मैं—"अलग-अलग जगहों पर ले जाते हैं। इस घूमने-फिरने से उनका ध्येय सारे भारत का दर्शन करा देना है, और इसीलिए उन्होंने इस योजना का नाम 'भारत-दर्शन' रखा है।"

शिशिर—"और अम्मा, स्कूल में जाने के लिए मुझे टिफिन कैरियर की जरूरत नहीं है। अगले महीने से हम स्कूल में ही खाना लिया करेंगे।"

हेमंत—"वाह भई, वाह ! फिर तो मुझे रोज-रोज खाना उठाकर नहीं ले जाना पड़ा करेगा।"

शरत—"तुम्हें पता है, अम्मा, कल व्यायाम करते समय एक लड़का बेहोश हो गया ?"

मैं—"अच्छा ! यह तो बहुत बुरी बात है। क्या बहुत देर व्यायाम कराया गया था ?"

शरत—"नहीं, वह लड़का तो व्यायाम शुरू होने के पांच मिनिट के भीतर ही गिर गया।"

मैं—"फिर क्या किया ?"

शिशिर—"झट स्कूल का डाक्टर बुलाया गया। उसने उसे दवा दी। तब उसे होश आया। अम्मा, मैं आफिस में मास्टरजी का रजिस्टर रखने गया था, तब सुना कि प्रिंसिपल साहब उस लड़के के पिताजी से कह रहे थे कि उनका लड़का बहुत कमजोर है। डाक्टर का विचार है कि उसे संतुलित भोजन नहीं मिलता।"

शरत—"हां, हमारी कक्षा के लड़कों के शारीरिक निरीक्षण की रिपोर्ट में डाक्टर ने कई लड़कों को बहुत कमजोर लिखा है।"

शिशिर—"अम्मा, हमारी कक्षा में कितने ही लड़के ऐसे हैं, जिनकी फीस बिल्कुल माफ है। कपड़े भी वे बहुत फटे हुए पहनकर आते हैं। उन्हें कैसे दूध, फल, घी, सब्जी मिल सकता है ? मैंने देखा है, उनके कटोरदान में सूखी रोटियां और कटा हुआ प्याज रहता है। ऐसा खाकर कमजोर तो होना ही हुआ।"

मैं—"हां, बेटा ! डाक्टरी परीक्षा में बहुत लड़के कमजोर पाये गये हैं। इसीलिए सरकार ने यह व्यवस्था की है कि एक समय का भोजन स्कूल में ही मिला करेगा। यह भोजन मुफ्त होगा। इसके लिए गरीब बच्चों के माता-पिता के सिर पर कोई

खर्चा नही पड़ेगा। भोजन बल-वर्द्धक होगा, पोषक होगा, सं
लित होगा, जिससे गरीब बच्चों का स्वास्थ्य न गिर पाये।"

शिशिर—"तो, अम्मा, खाने की योजना बनाई है, कपड़ों
भी क्यों नही बना देते? उन बेचारों के पास कपड़े भी नही होते

मैं—"वर्दी देने की योजना पर भी विचार किया जा र
है, पर अभी कोई निर्णय नही हो पाया है।"

हेमत—"अहा जी। बडा मजा आया। अब कपड़े भी स्कू
से मिला करेंगे।"

मैं—"कुछ देशो मे तो पढने-लिखने का सारा सामा
पुस्तकें-कापिया, पेन-पेंसिलें सब मुफ्त दी जाती है।"

शिशिर—"हा अम्मा, यह सुविधा भी हमारे देश
अवश्य देनी चाहिए। एक लडका है हमारी कक्षा में। उस
पिताजी की मृत्यु हो चुकी है। उसकी मा दूसरों के घर खाना बन
बनाकर गुजारा करती है। उसकी कापी भर जाने पर वह क
दिन तक काम करके नही लाया। जब मास्टरजी ने उससे प्या
से इसका कारण पूछा तो रोने लगा। बोला, उसकी माताजी
पास कापी खरीदने के लिए पैसे नही बचे। अब पहली तारीख
को तनखा मिलने पर लाकर देगी।"

मैं—"तब तुम्हारे मास्टरजी ने क्या कहा?"

शिशिर—"तब उन्होने उसे अपने पास से कापी खरीदक
दी। तबसे वह रोज काम करता है।"

मैं—"अरे, तेरे मास्टरजी तो बहुत अच्छे है। अच्छा, अ
अपनी चीजें बताओ और क्या-क्या चाहिए?"

शरत—"अम्मा, मुझे खाकी वर्दी चाहिए।"

मैं—"किसलिए?"

शरद—"हमारे स्कूल में स्काउटिंग सिखाते हैं। मैंने भी उसमें अपना नाम लिखा दिया है।"

मैं—"स्काउटिंग में क्या-क्या बतायेंगे ?"

शरद—"हमें शिविर पर ले जायेंगे, वहाँ जंगलों में रास्ता पहचानना, दूसरों को बताना, घायलों का उपचार करना, आग जलाना, तरह-तरह की सीटियाँ बजाकर दूर बैठे मित्रों को अपनी आवश्यकता बताना, रस्सी की तरह-तरह की गाँठें बनाना, असहाय की सहायता करना, यही सब।"

मैं—"क्या जंगल में तुम्हें खाना कौन बनाकर खिलायेगा। क्या नौकर जायेंगे तुम्हारे साथ ?"

शरद—"वहाँ हम अपने हाथों से सब काम करना सिखायेंगे—भोजन बनाना, बिस्तर लगाना, सफाई करना इत्यादि-इत्यादि।"

शिशिर—"अम्मा, मुझे एक बाँसुरी भी चाहिए। हमारे स्कूल में संगीत तथा वाद्य-वृन्द में सब तरह के वाद्य सिखाये जाते हैं। मैं बाँसुरी सीखूँगा।"

शरद—"मैं गाना सीखूँगा।"

हेमंत—"मैं तबला सीखूँगा।"

मैं—"जिसे संगीत अच्छा न लगता हो, या इस ओर जिसकी रुचि न हो ?"

शिशिर—"वह न सीखे। कोई जरूरी थोड़े है। जो सीखना चाहे सीखे, जो न सीखना चाहे न सीखे। कुछ तो शुरू ही नहीं करते। कुछ शुरू करते हैं, पर संगीत में रुचि न होने से बाद में वे छोड़ देते हैं। कुछ ऐसे हैं, जिन्हें संगीत की प्राकृतिक देन है।

शरत —"यही नहीं, हमारे स्कूल में चित्रकला की कक्षाएं भी खुली हुई हैं। जिनको उसका शौक होता है, वे उसे सीखते हैं।"

शिशिर—"अम्मा, इन छुट्टियों के बाद हमारे स्कूल में एक मास के लिए एक मास्टर टोकरी बुनना सिखायेंगे।"

शरत—"जैसे पिछले साल कागज के फूल बनाना सिखाया था।"

शिशिर—"अम्मा, कुछ गरीब बच्चों ने इतने सुंदर फूल बनाये कि दीवाली पर वैसे फूल खूब बना-बनाकर बेचे और

चित्र-कला के शौकीन

ेमा कमाने मे उन्होने अपने मा-बाप को सहायता दी।"

मैं—"हा बेटा, इसमे यही तो लाभ है। एक तो बच्चे को अपनी रुचि का काम करने को मिल जाता है, दूसरे, किसी काम को अच्छी तरह सीख जाने मे उसे अपना धधा बना सकता है।"

शिशिर—"अम्मा, पन्नी का बडा भाई पोलीटैकनीक स्कूल मे पढता है। वहा लकडी का काम और मशीनो का काम भी सिखाया जाता है।"

मैं—"हा बेटा, सब चीजे इसीलिए सिखाते है, जिससे यह पता चल जाय कि किस बालक मे प्राकृतिक देन किस कला की है। किसकी किसमे रुचि है? कौन किसमे तेज है? यह पता लग

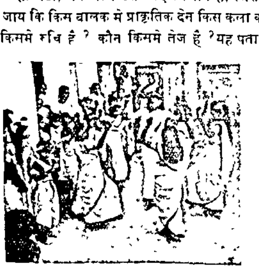

सांस्कृतिक कार्यक्रम

जाने पर आगे उसे उसी व्यवसाय में डाल देने से वह बहुत चमक जाता है।"

शरत—"अम्मा, आज बहुत थक गये। भूख लग आई।"

मैं—"क्यों, थक क्यो गये ?"

शरत—"हमारी वार्षिक अंतर्पाठशालीय खेल-प्रतियोगिता
ाट जो आ रही है। हमें रोज़ अभ्यास करना पड़ता है।"

मैं—"अच्छा, यह बात है। तूने किसमें भाग लिया ?"

शरत—"सौ मीटर की रेस में।"

शिशिर—"अम्मा, हमारे स्कूल मे तो आयेदिन कोई-न-
ई उत्सव होता ही रहता है। किसी दिन खेल-प्रतियोगिता, तो
सी दिन संगीत-प्रतियोगिता। किसी दिन वाक्-प्रतियोगिता
किसी दिन कहानी-प्रतियोगिता। कभी मुशायरा तो किसी
ा, फैंसी ड्रेस। किसी दिन विभिन्न कक्षाओं की नाटक-
ायोगिता, तो किसी दिन अंतर्पाठशालीय उत्सवों मे लोक-
य ड्रिल, नाटक। और-और भी न जाने कितनी तरह के
स्कृतिक कार्यक्रम होते रहते है।"

मैं—"अभी क्या है। बड़ी कक्षाओं मे जाकर तुम्हें एन० सी०
० की शिक्षा भी देंगे।"

शरत—"वह क्या होती है ?"

मैं—"वह सैनिक-शिक्षा होती है। उसका पूरा नाम है
नल कैडेट कोर। उसे नेशनल डिसिप्लिनरी कोर भी कहते हैं।"

शरत—"यह क्या होता है ?"

मैं—"इसमें भी कवायद करनी सिखाई जाती है और अपने
ा और शरीर को काबू में रखना सिखाया जाता है।"

शिशिर—"और अम्मा कल की वह बात याद है ?"

मैं—"क्या ?"

शिशिर—"देखो, भूल गईं इतनी जल्दी ? मैंने तुम्हें स्कूल
एक पर्चा लाकर दिया था ?"

मै—"अरे हा, याद आगई। वह पर्चेवाली बात! हा, याद है।"

शिशिर—"मास्टरजी ने तुम्हे बुलाया है न कल?"

मै—"हा!"

शिशिर—"क्यो अम्मा, मास्टरजी ने हमारी कक्षा के सब लडको को वे पर्चे दिये थे। सबके माता-पिता को बुलाया है?"

मै—"कल माता-पिता-शिक्षक-परिषद होगी।"

शिशिर—"वह क्या होती है?"

मै—"यह परिषद् विद्यार्थियो के मा-बाप और शिक्षको का एक सगठन है।"

शिशिर—"इसमे क्या होता है?"

मै––"इसमे माता-पिता और शिक्षक एक निश्चित समय में आपस में मिलते है और एक-दूसरे की शिकायतों को, बच्चो की समस्याओ को मिलकर हल करने की कोशिश करते है। बच्चो मे बहुत-सी ऐसी बुरी आदते पड़ जाती है, जिनको छुड़ाने के लिए शिक्षक और मा-बाप दोनों का सहयोग जरूरी है। पर जब वह आदत खाली शिक्षक ही की नजर मे आती है तो वह मा-बाप का सहयोग पाने के लिए परिषद की मीटिग के दिन मां-बाप का ध्यान उस ओर खीचता है। इसी तरह जब मा-बाप कोई बात देखते है तो वे मीटिग मे शिक्षक का ध्यान उस ओर खीच देते है।"

शिशिर––"सच, अम्मा ?"

मै––"हा, सच ! बेटा अब देश के सभी स्कूलों और बाल-सस्थाओ मे सुधार हो रहा है, जिससे आज के बालक भविष्य मे अच्छे व कर्त्तव्यनिष्ठ नागरिक बन सकें।"

: ५ :

अनाथाश्रम

मैं नुमायश जाने के लिए बस के अड्डे पर खड़ी थी। बच्चे मेरे साथ थे। भीड़ ज्यादा थी। बैठने जगह नहीं थी। जल्दी बस मिलने की आशा न थी। इतने में दो-चार बच्चों ने आकर हमें घेर लिया। गंदे शरीर, कई दिन से नहाये नहीं। कपड़ों के नाम फटी कमीज और छोटा-सा जांघिया। हाथ फैलाकर बोले—"माई, भगवान के नाम पर कुछ मिल जाय, चार दिन से कुछ भी नहीं खाया।"

शिशिर बोल पड़ा—"तुम कुछ काम क्यों नहीं करते?"

शरत्—"हाथ-पैर चलते हैं, फिर भी भीख मांगते हो?"

बालक—"क्या काम करूं? मुझे कौन नौकरी देगा?" मेरी छोटी ऊमर देखकर कोई मुझे नौकरी देने को तैयार नहीं।

"बूट-पालिस के लिए पैसा चाहिए, कई रंग की पालिश, कई बुरुश, उन्हें रखने के लिए बक्सा। मेरे पास तो खाने को भी कौड़ी नहीं है। अखबार बेचनेवाले इतने बच्चे हो गये हैं कि इस काम में हमें पूरा नहीं पड़ता।"

मैं—"टोकरी बुनो, कुर्सी बुनो, हाथ की चीजें बुनो।"

बालक—"मुझे ये काम नहीं आते, मुफ्त में कौन सिखायेगा?"

मैं—"कई ऐसे अनाथाश्रम खुले हुए हैं, जहां तुम-जैसे बच्चों को काम सिखाया जाता है।"

बालक—"माई तेरा भला हो। मुझे भी वहां भर्ती करा

दे। पर जबतक काम पूरा नहीं आवेगा तबतक क्या खाऊगा ?"

मैं—"खाने के लिए तुम्हे वही मिलेगा।"

बालक—"मुफ्त !"

मैं—"हां, मुफ्त। तुम्हारे घर मे कौन-कौन हैं ?"

बालक—"कोई नही, मा। पिछले साल मेरे मां-बाप दोनं हैजे मे मर गये।"

मैं—"वे क्या करते थे ?"

बालक—"दूसरो के घरों मे बर्तन मांजते थे।"

शिशिर—"तो क्या तुम तभी से भीख माग रहे हो ?"

बालक—"नही, कुछ दिन तक घर की चीजें बेच-बेचक गुजारा किया। जब सब चीजे खतम हो गईं, तो क्या करता पेट भरने के लिए भीख मागनी पडी।"

हेमत—"तुम किसी रिश्तेदार के घर क्यो नही चले गये।'

बालक—"चाचा के घर गया था, पर वे बहुत मारते थे मुझे सो मै एक दिन भाग आया।"

मैं—"अब कहा रहते हो ?"

बालक—"मेरे जैसे कई बच्चे हैं। हम साथ-साथ घूम फिरते हैं। रात को कहीं भी पड़ रहते है, किसीके बराडे में। म सच बताओ वहा रहने को जगह मिलेगी ?"

मैं—"हा, वहा रहने को जगह मिलेगी, सोने को बिस्त तम्त मिलेगा। वे सारी जरूरतें पूरी कर देते हैं।"

...—"और पहनने को ?"

"पहनने को कपड़े मिलते हैं। सर्दियों में कोट अ ...ते हैं। ओढ़ने-बिछाने को कबल, चादर और रजा

गर्मियो मे नेकर, कमीज पाजामे और कुर्ते।"

बालक—"वे लोग कुछ पढाते भी है?"

मैं—"हा, क्यो नही! पढने का भी पूरा इतजाम है। पर किसी आश्रम के पास ज्यादा पैसा न होने से वहा के बच्चे प्रायमिक शिक्षा ही पा सकते है। कोई सस्था स्कूल से जुडी होती है तो वहा ऊची शिक्षा दिला देते है। वहां सब पढने की पुस्तकें, कापी, पेसिल मुफ्त, और यदि बच्चा खास कमजोर हुआ तो उसके लिए मास्टर भी रख देते है।"

बालक—"और अगर कोई उसमे भी आगे पढना चाहे तो?"

मैं—"तो उसे रहना-खाना-कपडा तो पहले की भाति मुफ्त मिलता रहता है, पर कालिज की फीस का प्रबध उसे आप करना पडता है। ऐसे बहुत-से बच्चो ने एम० ए० करके ऊचे-ऊचे ओहदे प्राप्त किये है।"

बालक—"वहा और भी कुछ सिखाते है?"

मैं—"हा, वहा सगीत की अच्छी शिक्षा दी जाती है। गायन-कला और वाद्य सगीत। कई लडके तो सगीत मे ऐसे होशियार हो गये है कि रेडियो मे उन्हे जगह मिल गई है।"

बालक—"वहा कोई बीमार पड जाय तो?"

मैं—"बच्चो को बीमारी या कमजोरी की हालत में औषधालय से दवाई मिलती है।"

बालक—"मा, अगर वहा कोई बहुत छोटा बच्चा दाखिल होना चाहे तो हो सकता है क्या?"

मैं—"बहुत छोटे बालकों की देखभाल के लिए वहां नौकर होते हैं, जो उन्हें नहलाते-धुलाते और खिलाते-पिलाते हैं। उनके

कपड़े धोते हैं। वैसे वहां के बड़े बच्चे भी छोटे बच्चों की देखभाल करते हैं।"

बड़ी उमर की लड़कियों का अच्छे घरों से विवाह

बालक—"मां, अगर मेरा दिमाग पढ़ाई में न लगा तो ?"

मैं—"ऐसे बच्चों को वे दर्जीगिरी और बढ़ईगिरी अम्बर चर्खा चलाना आदि का काम और कुर्सी बुनना, टोकरी बुनना सिखा देते हैं।"

बालक—"मा, अब मैं सड़कों की धूल नहीं छानूंगा, मैं जरूर इनमें से किसी-न-किसीमें दाखिल हो जाऊंगा।

मैं—"अनाथाश्रम में बच्चों को सब तरह की सहायता मिलती हैं। बालिकाश्रम मे लडकियों को सिलाई, बुनाई, कढ़ाई, भोजन बनाना, आचार मुरब्बे डालना, खिलौने बना बनाना, अंबर चखा चलाना और गाना-बजाना तो कराते ही हैं। बड़ी उमर की अच्छा वर खोज देते हैं। प्रायः सभी में शाम को मनोरंजन और खेलकूद की व्यवस्था है। बच्चों को पिकनिक पर भी ले जाते हैं, फिल्म-शो

दिखाते हैं।"

शिशिर—"अम्मा, अनाथाश्रम में पैसा कहां से आता ?"

मैं—"बेटा, बहुत-से धनी और दयालु पुरुष दान देते हैं।"

बालक—"मां, भगवान तुम्हारा भला करें। अब मैं अपनी जिंदगी बर्बाद नहीं करूंगा। किसी अनाथाश्रम में भरती होकर पढ़ूंगा, लिखूंगा और काम सीखूंगा।"

: ६ :

बाल-सुधार-गृह

इस बार जब मै कलकत्ते से लौटी तो आते ही बच्चों ने घेर लिया।

शिशिर—"अम्मा, तुम तो कलकत्ता कई दिन लगाकर आई। क्यों, कैसा लगा वह ?"

मैं—"बेटा, शहर तो बहुत बडा है।"

शिशिर—"हमारे लिए क्या-क्या चीजें लाईं ?"

शरत—"मैंने तुमसे एक बुद्ध की मूर्ति लाने को कहा था।"

हेमंत—"मैंने तुमसे मिट्टी के छोटे-छोटे खिलौनों का सेट लाने को कहा था।"

शिशिर—"और मैंने तुमसे सितार लाने को कहा था।"

मैं—"बेटा, तुम्हारी मांगें मैं जरूर पूरी करती, पर जानते हो पहले दिन ही मेरा बटुआ उड गया ?"

सब बच्चे—"हैं ! बटुआ उड गया ? कैसे ?"

मैं—"जब शिक्षा-सम्मेलन के मंडप में रात को सांस्कृतिक कार्यक्रम देख रही थी तो किसी तरह बहुत सारे बच्चे घुस आये।"

शिशिर—"बच्चों में क्या ? तुम बटुआ उड़ने की बात सुनाओ।"

मैं—"हां, हां, वही तो सुना रही हूं। वहां मेरे आसपास भी बहुत-से बच्चे खड़े थे। कार्यक्रम शुरू होने पर वे रोशनी बुझाकर . . . कर देते हैं। कार्यक्रम समाप्त होने पर रोशनी जली तो

देखती क्या हूं कि मेरा बटुआ गायब और बटुए के साथ-साथ वहां के सब बच्चे भी नदारद।"

शरत—"तुम्हें बिल्कुल पता नही चला कि कब बटुआ गया?"

मैं—"बेटा, अगर यह पता चल जाता तो बटुआ क्यो उडने देती?"

हेमत—"क्या इतने छोटे-छोटे बच्चे भी ऐसा अपराध कर बैठते है?"

मैं—"हा बेटा, बिगडे हुए बच्चे सब तरह के अपराध कर सकते है। जेब कतरना, चीजे चुराना, दुकान से चीजे उठा लेना, ताला तोडना।"

शरत—"हे भगवान, उनमे ऐसा साहस कैसे आ जाता है?"

मैं—"अरे, इतना ही नही, कभी-कभी तो वे खून करने को भी तैयार हो जाते है।"

शिशिर—"इन्हे कौन सिखाता है यह सब?"

मैं—"बुरी सगत।"

शिशिर—"वे बुरी सगत मे पड कैसे जाते है?"

मैं—"चीजो की तगी से, मा-बाप की गरीबी से या……"

शरत—"या क्या?"

मैं—"या मा-बाप की लापरवाही से। बेटा, कही-कही तो मा-बाप ही गरीबी के कारण बच्चों से बुरे काम करवाने लगते है। कही मा-बाप अपने कारोबार मे, घर-गृहस्थी के झझट मे या भोग-विलास मे इतने अधिक डूब जाते है कि वे बच्चे की ठीक से परवा नही कर पाते और ऐसे बच्चे बुरी संगत मे

पड़कर सब तरह के कुकर्म करने लगते हैं।"

शरत—"बच्चों के बिगड़ने के और क्या कारण हैं?"

मैं—"कुछ बच्चे अनाथ होने पर बिगड़ जाते हैं। जब उनके मां-बाप मर जाते हैं, या मां-बाप में से एक मर जाता है, उसकी देखभाल करनेवाला कोई नहीं रहता तब वे बुरी संगत में पड़कर या भूख से लाचार होकर चोरी करना सीख जाते हैं।"

शिशिर—"अच्छा, बुरी आदत पड़ने के और भी कोई कारण होते हैं क्या?"

मैं—"हां, चोरों और जेब-कतरों के दल बने हुए होते हैं। वे अपनी रोजी के लिए बच्चों को चुराकर कहीं दूर ले जाते हैं। वहां मार-पीटकर उन्हें चोरी और जेब कतरने की कला सिखाते हैं। उनपर कड़ी निगाह रखते हैं, कहीं भागने नहीं देते। ऐसे बच्चे कुछ दिन में कुशलता से चोरी करना सीख जाते हैं।"

शिशिर—"तो पुलिस इन्हें पकड़ती क्यों नहीं?"

शरत—"उन्हें सजा क्यों नहीं देती?"

हेमंत—"उन्हें जेल में क्यों नहीं बंद करती?"

मैं—"बेटा, जबतक उनके अभाव को या उनकी बुरी आदत के कारण को नहीं मिटाया जायगा तबतक जेल में ठूंसने से कोई लाभ नहीं। सजा भुगतने के बाद जब उन्हें फिर से भूखेपेट दिन बिताने पड़ेंगे तो फिर चोरी करेंगे। या जब दुबारा मा-बाप की लापरवाही से बच्चा स्नेह का भूखा हो जायगा तो बुरे लोग अपना प्यार दिखाकर उसे फांसेंगे?"

शिशिर—"तो इसका इलाज क्या है?"

मैं—"इसका इलाज है इन्हें आत्म-निर्भर बनाना। कुछ कारोबार सिखाना, जिससे इन्हें भूखा न रहना पड़े। या इनके मा-

बाप को समझाकर उनके आचरण में परिवर्तन करना।"

शरत—"ऐसा कौन करेगा ?"

मैं—"अपराधी बाल-सुधार-गृह या बाल-सहयोग।"

शिशिर—"यह अपराधी बाल-सुधार-गृह क्या है ?"

मैं—"यह एक संस्था है। जब अपराधी बच्चों को पुलिस पकड़कर किसी महिला मजिस्ट्रेट के सामने पेश करती है तो वह उन्हें अपराधी बाल-सुधार-गृह के पास भेज देती है।"

शिशिर—"बच्चों को यहां कितने दिन के लिए रखा जाता है ?"

मैं—"महिला मजिस्ट्रेट उनका अपराध देखकर समय निश्चित कर देती है। कुछ को जमानत पर छोड़ देते हैं।"

शिशिर—"छोड़ तो देते है, पर बच्चा बाहर आकर फिर वही सब काम करने लगे तो ?"

मैं—"जमानत का अर्थ यह होता है कि मा-बाप उसका जिम्मा लें कि आगे से यह ऐसा काम नही करेगा।"

शरत—"तब तो हर अपराधी को उसके मा-बाप छुड़ा लेते होंगे ?"

मैं—"नही, ऐसा नही होता। एक समाज-सेवक उसके घर के आसपास जाकर पूछताछ करके उसके घर की दशा, मा-बाप के चरित्र और स्थिति के बारे में पता करता है। अगर वे सचमुच बच्चे को सुधारने की अवस्था में हों, तब तो बच्चे को छोड़ते है, नही तो नही।"

शरत—"बाद में इस बात का पक्का पता कैसे चलेगा कि वह ठीक हो गया ?"

मैं—"समाज-सेवक हर महीने उसके घर जाकर पता करता है। उसके बाप की रिपोर्ट ली जाती है।"

शिशिर—"और अगर किसीकी जमानत देनेवाला कोई न हो तो?"

मैं—"बड़े अपराधियों को अधिक समय के लिए और छो अपराधियों को कम समय के लिए वही गृह में रख लेते हैं।"

शिशिर—"क्या बाल-सहयोग में भी सजा पानेवाले अप राधी भेजे जाते हैं?"

मैं—"नहीं, वहां सजा पानेवाले तो नहीं भेजे जाते, पर वहां ऐसी प्रवृत्तियों के बालक स्वयं ही आकर्षित होकर पहुंच जा हैं, या उनके मां-बाप उन्हें वहां छोड़ आते हैं।"

शिशिर—"बच्चे स्वयं वहां कैसे पहुंच जाते हैं?"

मैं—"बाल-सहयोगवालों ने घनी आबादी के बीच पांच ऐ केंद्र बना रखे हैं, जहां बच्चे खेल-कूद या फिल्म या हाथ के का के कारण आकर्षित होते हैं। इन केंद्रों में आने-जाने वाले बच्च को बाल-सहयोग का पता चल जाता है और वे अपने जीवन सुधार करने के लिए कुछ सीखने की खातिर उस संस्था में दाखि हो जाते हैं।"

शरत—"तो उनमें सुधार कैसे हो जाता है?"

मैं—"अपराधी बाल-सुधार-गृह तथा बाल-सहयोग, इ दोनों ही संस्थाओं में एक-एक मनोवैज्ञानिक रहता है।"

शिशिर—"उसका क्या काम होता है?"

मैं—"उसका काम होता है बच्चे से मित्रता करके उसव पिछ... इतिहास मालूम करना। उसके मां-बाप, भाई -साथियों, घर-बार, पास-पड़ोस वगैरह की जानकार

करना। उसके घर की आर्थिक स्थिति तथा उसके मां-बाप के व्यवहार का पता चलाना।"

शिशिर—"यदि उसके मा-बाप की लापरवाही या दोष से उसमें यह बुरी आदत पड़ी हो तो ?"

मैं—"तो ये मनोवैज्ञानिक उसके घर जाकर उसके मा-बाप से बातचीत करके उन्हे समझाने-बुझाने की कोशिश करते हैं। यदि मा-बाप बात को समझ जाते हैं तो बच्चा उनकी निगरानी मे छोड दिया जाता है, अन्यथा उसे संस्था में रख लेते हैं।"

शिशिर—"बच्चा बाद मे सुधरा या नही और मा-बाप ने बालक मे रुचि लेनी आरंभ की या नही इसका पता कैसे चलता है ?"

मैं—"इसका पता मनोवैज्ञानिक बीच-बीच मे करता रहता है। वह यह भी मालूम करता है कि बच्चे के मन को कभी चोट तो नही पहुची ? अगर पहुची तो कब पहुची, कैसे पहुची ? उसका क्या उपाय है ?"

शिशिर—"और उसके अभाव के बारे ?"

मैं—"हा, उसके अभाव के बारे मे मालूम करते है। यह भी कि उसे किन चीजो की जरूरत रही है, उनमे से क्या-क्या मिली और क्या-क्या नही मिली ?"

शिशिर—"अगर अभाव के कारण उसमें यह बुरी आदत पडी हो तो क्या ये उसकी कमियो को पूरा कर देती है ?"

मैं—"उसे हाथ के काम सिखाकर इस योग्य बना देते हैं कि वह स्वयं कमा सके और देश का अच्छा नागरिक बन सके। स्वयं अपने पाव पर खड़ा हो सके।"

भरत—"उन्हे हाथ का क्या-क्या काम सिखाते है ?"

दस्तकारियों की शिक्षा

मैं—"बेंत का काम, जैसे बेत की कुर्सी, बच्चो के लिए बेंत के कमोड, बेत के लैम्प, बेत की टोकरिया, बेत के बटुए, बेंत की ट्रे, आदि आदि।"

हेमंत—"और ?"

मैं—"बढईगीरी, कपड़ा बुनना, सूत कातना, कपड़ा सीना, दर्जी का सारा काम, इत्यादि।"

हेमंत—"और ?"

मैं—"बागवानी, चित्र-कला, कागज के फूल बनाना, वगैरह और खेतीबाडी भी सिखाई जाती है।"

शरत—"ये सब काम सब लडकों को सिखाये जाते है ?"

मैं—"जिस लड़के को जिस चीज का शौक हो, पहले उसको वही कला सिखाई जाती है।"

शरद—"फिर बाद मे ?"

मैं—"बाल-सहयोग में तो बालक काम सीखकर बाहर जाकर काम करने लगते है, परन्तु अपराधी-बाल-सुधार-गृह में यदि उसका पाठ्य-क्रम पूरा हो गया हो, पर उसे छोड़ने का समय पूरा न हुआ हो तो फिर दूसरी कोई कला सिखाना शुरू कर देते है।"

शरद—"और भी कुछ सिखाते है या केवल यही हाथ का काम ?"

मैं—"काम के अलावा उन्हे तीन घटे रोज पढ़ना पड़ता है।"

हेमत—"कौन-सी कक्षा तक की पढ़ाई कराते है ?"

मैं—"पाचवी तक की बुनियादी शिक्षा दी जाती है।"

शरद—"और यदि किसीकी इससे अधिक पढ़ने की इच्छा हो तो ?"

मैं—"तो किसी स्कूल मे उसे आगे पढ़ाने का प्रबध कर दिया जाता है। इस प्रकार बाल-सहयोग के कई बच्चे कालिज तक पहुच गये है।"

शिशिर—"हाथ के काम से इनकी कमाई हो जाती है ?"

मैं—"हा, क्यों नहीं। बाल-सहयोग मे तो आर्डर का खूब काम लिया जाता है। वहा लोहे का काम भी होता है। लोहे की बाल्टिया, सदूक इत्यादि।"

शरद—"काम से जो कमाई होती है उसका क्या करते है ?"

मैं—"उन्होंने एक छोटा-सा बैंक खोल रखा है। बच्चा

अपनी कमाई उस बैंक में जमा कराता जाता है। जब कुछ रुपये जमा हो जाते हैं तो बच्चे अपनी जरूरत की चीजें खरीद लेते हैं जैसे कमीज, कोट।"

शरत—"क्या उनको वहीं से कपड़े नहीं मिलते ?"

मैं—"मिलते हैं, पर बाल-सहयोग में कुछ बालक ऐसे होते हैं, जो वहां नहीं रहते। रोजाना घर से आते-जाते हैं। वे अपनी-अपनी इच्छानुसार कपड़े बनवाकर पहनते हैं।"

शरत—"उनकी अधिक-से-अधिक क्या उमर होती है ?"

मैं—"सोलह साल की।"

हेमन्त—"और कम-से-कम ?"

मैं—"छः साल। छः से तेरह साल तक के बच्चे वहां रोज आते हैं और रोज रात को वापस अपने घर चले जाते हैं। तेरह साल से ऊपर तक के बच्चों को इच्छानुसार वहां रखा भी जाता है।"

शिशिर—"इस संस्था से छूटने के बाद बच्चे कहां जाते हैं ?"

मैं—"संस्था सिफारिश करके इन्हें कहीं-न-कहीं काम पर लगा देने की कोशिश करती है।"

शिशिर—"इन सबको अच्छा काम मिल जाता है ?"

मैं—"हां, अधिकांश को उनकी हाथ की सफाई के हिसाब से काम-काज मिल ही जाता है।"

शिशिर—"पर जिसको नहीं मिल पाता उसका क्या होता है ?"

मैं—"बाल-सहयोग के काफी बालक तो इसी संस्था में अपना काम स्वयं चलाते रहते हैं और जो अपना काम करना

खाना-पीना, नाश्ता सब संस्था ही देती है

चाहते हैं, उनमें से कुछको उसके काम के औजार खरीद देते हैं, कुछको रुपये का प्रबंध कर देते हैं।"

शरत—"और बाल-सुधार-गृह में ?"

मैं—"वहां अभी तो ऐसा कोई प्रबंध नहीं होता, पर आशा है कि भविष्य में वे भी सब बच्चों का प्रबंध कर देंगे।"

शरत—"इनके खाने का प्रबंध क्या होता है ?"

मैं—"खाना-पीना, नाश्ता सब संस्था ही देती है।"

हेमंत—"और पहनने को ?"

मैं—"पहनने को। बाल-सुधार-गृह साल में चार निकर औ चार कमीजें देता है।"

हेमन्त—"और बाल-सहयोग ?"

मैं—"बाल-सहयोग में चार या ऐसा कोई कड़ा नियम न है। कुछ घर का कपड़ा पहनते हैं, कुछ कमाकर जो पहन चाहें, पहनें और कुछ को संस्था खादी के चार निकर औ खादी की कमीज पहनने को देती है। जाड़ों में गरम कपड़े।"

हेमन्त—"और सोने को ?"

मैं—"सोने को एक कम्बल, एक दरी, चादर और दो- कवर्स हर लड़के को दिये जाते हैं। बाल-सहयोग में बिस्त ढकने को एक-एक चादर और देते हैं।"

शरद—"जिंदगी की सब जरूरतें भी पूरी हो जाती हैं अ काम भी सिखा दिया जाता है।"

मैं—"हां, काम सीखने से वे खुद कमाने-खाने योग्य हो ज हैं और शिक्षकों की संगति और शिक्षा से, स्कूल के नियंत्रण उनकी बुरी आदतें छूट जाती हैं।"

शिशिर—"वहां से बाहर निकलकर आजादी पाकर बहुत खुश होते होंगे ?"

मैं—"खुशी तो ऐसी होती है, जैसे और बच्चे छुट्टियों में लौटते समय खुश होते हैं।"

शिशिर—"क्यों ? और स्कूलों में बच्चों को कोई जेल थे ही होती है। यह तो जेल-सी हुई।"

मैं—"नहीं बेटा, स्कूल की चहारदीवारी के अंदर इ बिल्कुल खुला छोड़ा जाता है। अंदर, और स्कूलों की तरह खे होते हैं।"

शिशिर—"खुले आंगन मे खेल होते है ?"

मैं—"हां, खुले आगन मे खेल होते हैं—जैसे फुटबाल, वालीबाल।"

शरत—"तब तो उन्हे सचमुच ऐसा नही लगता होगा, जैसा जेल मे।"

मैं—"नही, बिल्कुल नही। वहा केवल बाहर के दरवाजे पर ताला होता है, अंदर नही। इसलिए उन्हे ऐसा महसूस नही होता कि वे सजा भुगत रहे है, बल्कि उन्हे आजादी पाकर खुशी होती है और इसलिए उनमें और भी जल्दी सुधार होता है और बाल-सहयोग मे तो बच्चे अपनी इच्छा से आते है, इसलिए बाहर का ताला भी नही होता। वहा किसी प्रकार की कोई बंदिश नही, कोई रोक-टोक नही। समय की भी कोई पाबदी नही। जब चाहे आओ, जब चाहे जाओ।"

शरत—"यह क्यो ? समय की पाबदी तो होनी ही चाहिए।"

मैं—"देखो, बहुत-से बच्चे ऐसे होते है जो स्कूल भी जाना चाहते है और काम सीखकर कुछ कमाना भी चाहते है, इसलिए वे शाम को आते है।"

शिशिर—"और ?"

मैं—"और कुछ बच्चे ऐसे होते है, जो दिन मे काम सीखकर शाम को खेलना चाहते हैं। वे दिन मे आकर काम सीखते है।"

शरत—"और जो तीनों काम करना चाहते है ?"

मैं—"वे तीन घंटे पढ़ते है, तीन-चार घटे काम सीखते है और शाम को खेलते है, आमोद-प्रमोद करते है।"

शिशिर—"तो ये संस्थाएं बच्चों में इस प्रकार सुधार करती हैं।"

मैं—"हां, इस प्रकार अपराधी बालकों का मानसिक अध्ययन करके, उनकी कमियों को पूरा करके, उनके घर के वातावरण में यथासंभव परिवर्तन करके, उनकी बुरी प्रवृत्तियों को उखाड़ देते हैं और उन्हें देश का उत्तरदायी और सच्चा नागरिक बना देते हैं।"

शरत—"दिल्ली के अतिरिक्त कहीं और भी ऐसी संस्थाएं हैं?"

मैं—"हां, बरेली में एक 'किशोर-संस्था' है। वहांपर किशोर कैदियों को रखते हैं।"

हेमंत—"किशोर से क्या मतलब?"

समय का अपव्यय

मैं—"किशोर से मतलब है बारह-तेरह साल से लेकर बीस वर्ष की आयु तक के, जो बालक से बडे हों और युवाओ से छोटे।"

भरत—"वहांपर भी वे ही कार्यक्रम होते हैं क्या ?"

मैं—"हा, प्राय: वे ही होते हैं। बस बच्चो के योग्य जो बाते होती है, उन्हें बड़ो की रुचि की कर देते है। नाटक, आमोद-प्रमोद, मनोरंजन, भ्रमण इत्यादि जरा बडी उमर के हिसाब से कर देते है।"

हेमंत—"और कहा-कहा है ऐसी सस्थाए ?"

मैं—"बंबई, कलकत्ता और मद्रास जैसे सभी बडे नगरो मे ऐसी सस्थाएं खुल गई है। आशा है, अन्य स्थानो मे भी उनकी व्यवस्था हो जायगी।"

शिशिर—"तो ये संस्थाएं बच्चों में इस प्रकार सुधार करती हैं।"

मैं—"हां, इस प्रकार अपराधी बालकों का मानसि अध्ययन करके, उनकी कमियों को पूरा करके, उनके घर के वात वरण में यथासंभव परिवर्तन करके, उनकी बुरी प्रवृत्तियां उखाड़ देते हैं और उन्हें देश का उत्तरदायी और सच्चा नागरि बना देते हैं।"

शरत—"दिल्ली के अतिरिक्त कहीं और भी ऐसी संस्था है?"

मैं—"हां, बरेली में एक 'किशोर-संस्था' है। वहां किशोर कैदियों को रखते हैं।"

हेमंत—"किशोर से क्या मतलब ?"

समय का अपव्यय

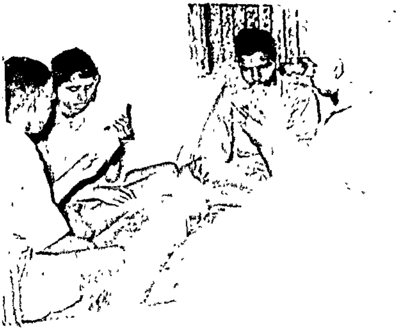

मैं—"किशोर से मतलब है बारह-तेरह साल से लेकर बीस वर्ष की आयु तक के, जो बालक से बड़े हों और युवाओं से छोटे।"

शरत—"वहांपर भी वे ही कार्यक्रम होते हैं क्या ?"

मैं—"हां, प्रायः वे ही होते हैं। बस बच्चों के योग्य जो बातें होती हैं, उन्हें बड़ों की रुचि की कर देते हैं। नाटक, आमोद-प्रमोद, मनोरंजन, भ्रमण इत्यादि जरा बड़ी उमर के हिसाब से कर देते हैं।"

हेमंत—"और कहां-कहां हैं ऐसी संस्थाएं ?"

मैं—"बंबई, कलकत्ता और मद्रास जैसे सभी बड़े नगरों में ऐसी संस्थाएं खुल गई हैं। आशा है, अन्य स्थानों में भी उनकी व्यवस्था हो जायगी।"

: ७ :

विकलांगों का स्कूल

एक दिन मै बाजार से जा रही थी तो देखती क्या हूं कि एक ग्रामीण दस-ग्यारह साल के एक लड़के को गोदी में उठाये जा रहा है। आश्चर्य हुआ कि इतना बडा लड़का अपने-आप क्यों नही चल रहा। इसका बाप भी अजीब आदमी है जो उसे उठाये-उठाये फिर रहा है। क्यों नही उससे कहता कि भइया, अपने-आप चलो। चेहरे से देखने मे बीमार भी नही मालूम हो रहा था। हां, बाप के चेहरे पर अवश्य थकान के चिन्ह उभर आये थे। पहले तो मैं कुछ नही बोली। चुपचाप देखती रही। पर आखिर बोले बिना रहा नहीं गया। कह ही बैठी—"भाईसाहब, इसे खुद चलने दीजिये न। आप क्यों इतने बड़े लड़के को गोदी मे लिये जा रहे हैं?"

ग्रामीण—"बहनजी, क्या करू? मेरी तो किस्मत ही फूट गई। इसके पांव में लकवा मार गया है। अब यह अपने-आप नहीं चल सकता। अब तो यह सारी उमर का रोना हो गया। यहां दिल्ली में इसे डाक्टर को दिखाने लाया था।"

मैं—"तो डाक्टर ने क्या कहा?"

ग्रामीण—"डाक्टर ने तो कोई उम्मीद नहीं दिलाई। डाक्टरी इलाज तो कई साल से चल रहा है, पर कोई फायदा नही हुआ।"

मैं—"फिर, अब क्या सोचा है?"

ग्रामीण—"सोचूंगा क्या, बहनजी! जबतक जीता हूं

तबतक तो इसे भूखा नही रखूंगा। पर मेरे मरने के बाद यह कहा से खायगा, कौन इसके काम-काज का भार लेगा, मुझे तो इसकी चिंता के मारे रात-दिन चैन नही।"

मैं—"तो अब कहां ले जा रहे हो?"

ग्रामीण—"अब इसे घर लिये जा रहा हूं। कोई इलाज बाकी नही छोड़ा।"

मैं—"घबराओ नही। ऐसे तो सचमुच इस बच्चे की जिंदगी बरबाद हो जायगी।"

ग्रामीण—"तो फिर बहनजी, आप ही कुछ बताइये।"

मैं—"दिल्ली में एक ऐसा स्कूल है, जहा विकलांग या मानसिक रूप से पिछड़े हुए बच्चो का इलाज होता है। एक बार वहीं कोशिश कर देखो।"

ग्रामीण—"सच? ऐसा भी कोई स्कूल खुल गया? कहां पर है यह?"

मैं—"वह जनपथ में, फिल्म-ऑडिटोरियम के पीछे है।"

ग्रामीण—"उसमें किस-किस बीमारी के बच्चे रखे जाते है?"

मैं—"ऐसे बच्चे, जिनके हाथ या पांव में लकवा मार गया हो, या जिनकी उंगलियां खराब हो गई हों, या दिमाग काम न करता हो, बच्चे का मानसिक विकास ठीक से न हुआ हो या बड़ी उमर के बालक का दिमाग एक शिशु के जैसा हो, या बच्चा गूंगा-बहरा हो। मतलब यह कि बच्चे में कोई-न-कोई ऐसी कमी हो, जो दूसरे बच्चों में नहीं पाई जाती।"

ग्रामीण—"बहनजी, अब डाक्टर ठीक नहीं कर सके तो वे

कैसे ठीक कर देंगे इस बच्चे को।"

मैं—"देखो! यह जरूरी नहीं कि बच्चा यहां ठीक ही हो जाय। पर एक तो यहां ऐसे बच्चे को अपना काम अपने-आप करने का ढंग सिखा दिया जाता है। दूसरे, कुछ कमा सकने योग्य चीजें भी सिखा देते हैं।"

ग्रामीण—"बहनजी! आप तो पहेलियां बुझाती हैं। भला यह बच्चा अपने-आप काम-काज कैसे कर लेगा?"

मैं—"यही तो आश्चर्य की बात है। सुनो भाई, एक तो वे रोज वैज्ञानिक ढंग से ऐसे बच्चे की मालिश करते हैं।"

ग्रामीण—"हां, बहनजी, मालिश तो इसे जरूर फायदा पहुंचायगी, पर मुझे तो इतना समय ही नहीं मिलता कि मैं रोज एक घंटे तक इसकी मालिश करूं।"

मैं—"फिर वे ऐसी कुर्सी बना देते हैं कि बच्चे के पांव की कसरत हो जाती है। जैसे एक टेढ़ी कुर्सी पर बच्चे को बैठा दिया। उसके पांव आगे से बांध दिये। कुर्सी के टेढ़े होने से वह फिसल जाता है। फिर वह हाथों के जोर से पीछे को खिसकने की कोशिश करता है। आगे-पीछे होने के कारण उसके पैरों की हालत में फर्क आना चाहिए। पर पांव बंधे होने के कारण हिल नहीं सकते। इसलिए उनपर जोर पड़ता है और धीरे-धीरे वे काम करने लगते हैं।"

ग्रामीण—"इस कुर्सी से क्या वह बिल्कुल ठीक हो जाता है?"

मैं—"इसके बाद उसे पैरों से चलनेवाली लकड़ी काटनेवाली एक मशीन दे देते हैं और लकड़ी काटना सिखाते हैं। लकड़ी काटने के लिए बार-बार पांव हिलाने पड़ते हैं, उससे पांवों में

मजबूती आने लगती है।"

ग्रामीण—"तो इस तरह उन्हें कई-कई काम करने पड़ते हैं तब कहो जाकर रोगी के पाव ठीक होते है ?"

मैं—"केवल यही नही, पाव ठीक होने के साथ-साथ उसे लकडी की तरह-तरह की चीजें बनानी आ जाती हैं, जिनसे वह अपनी रोजी भी कमा सकता है।"

ग्रामीण—"बहनजी, अगर यह इस लायक हो जाय तो मेरी सारी चिंता दूर हो जाय। और वहा क्या कराते है ?"

मैं—"वहा बच्चे को पढना-लिखना भी सिखाते है।"

ग्रामीण—"तब तो बहनजी, बहुत ही अच्छा है। पर जिसकी उंगलिया काम न करती हो, अकड़ गई हों, वह कैसे लिख सकेगा?"

मैं—"उसको ऐसे-ऐसे काम देते है, जिनसे उंगलियों की कसरत होती है।"

ग्रामीण—"जैसे ?"

मं—"जैसे रेशम की डोरियों से रस्सी बुनना, डोरी बुनना। बेंत का काम करना।"

ग्रामीण—"उससे उगलिया चलने लगती है ?"

मैं—"हां। शुरू-शुरू मे बच्चे को अपनी उंगलियां मोडने में बहुत जोर लगाना पडता है, बहुत धीरे-धीरे काम करना शुरू करता है, पर फिर अभ्यास हो जाने से उंगलियों में मजबूती आ जाती है।"

ग्रामीण—"और?"

मैं—"कुछ मोटे-मोटे छेदों में लकड़ी के कसे हुए हैंडिल घुमा देते है। फिर उससे कहते है कि हैडिल को निकालो। जोर लगाने

के लिए एक हाथ से वह कोई चीज पकडता है और दूसरे हाथ से कसकर हेंडिल पकडता है, उसे खीचता है। न खिचने पर हेंडिल को और जोर से पकडता है और कसकर खीचने की कोशिश करता है। इस तरह हेंडिल को पकडने और खीचने में मुट्ठी भीचनी पड़ती है। जब हेंडिल को छोडता है तो मुट्ठी खोलनी पड़ती है। रोज ऐसा करने से उसकी उगलियो में ताकत आ जाती है और वे आसानी से मुडने लगती है।"

ग्रामीण—"बहनजी, ये काम तो डाक्टर लोग भी नही करते।"

मैं—"ऐसे बालक को उगलियो के अभ्यास के लिए बेंत का जो काम सिखाया जाता है, उससे वह रोजी का एक तरीका भी सीख जाता है।"

ग्रामीण—"क्या उसको पढाते भी है ?"

मैं—"पढाते तो सभीको है। जिनका दिमाग और हाथ ठीक होते है वे जल्दी पढना सीख जाते है। जिनका दिमाग विकसित नही होता वे धीरे-धीरे पढाई कर पाते है।"

ग्रामीण—"ऐसे दिमागवालों का क्या इलाज करते हैं, बहनजी ?"

मैं—"उनको कोई-न-कोई ऐसा काम देते रहते है, जिसमें ध्यान जमाना आवश्यक हो। जैसे बेत का ही काम है। बालक को कुर्सी या टोकरी बुनने में ध्यान लगाना ही पडेगा। हाथो के कामों में ध्यान बडी जल्दी जमता है। कालीन बुनना, धागो का जाल बनाना आदि काम भी मदद करते है।"

ग्रामीण—"और ?"

मैं—"ऐसे बच्चे बागवानी बडी रुचि से करते है और बहुत

अच्छी। इसलिए इन बच्चों का सारा सुधार हाथ के काम द्वारा कराया जाता है।"

ग्रामीण—"बहनजी, मैं तुम्हारा अहसान उमरभर नहीं भूलूंगा, मुझे इतना और बता दो कि वहां खर्चा कितना आता है?"

मैं—"गरीब बच्चों को वहां मुफ्त रखते हैं, पैसेवालों से फीस लेते हैं।"

ग्रामीण—"लेकिन बहनजी, मैं तो दिल्ली में रह नहीं सकता।"

मैं—"भई, इसमें परेशानी की क्या बात है? बाहर के, खासकर दूर रहने वाले, बच्चों को वहीं रखा जाता है?"

ग्रामीण—"उसके वहीं रहने और खाने का तो खर्चा आयगा?"

मैं—"मैंने कहा न कि गरीब बच्चों से तो कुछ भी नहीं लिया जाता। पर ऐसे बच्चे जिनके मां-बाप पैसा खर्च कर सकते हैं और वहीं रहते हैं, उनसे अस्सी रुपये मासिक लिया जाता है। उसमें रहना, खाना-पीना, इलाज, पढ़ाई सब कुछ आ जाता है।"

ग्रामीण—"और जो दिन में आते हैं, शाम को घर लौट जाते हैं, उन्हें क्या देना पड़ता होता है?"

मैं—"उनका पचास रुपया खर्च आता है। पर उन्हें भी दिन में खाने के लिए स्कूल से नाश्ता दिया जाता है।"

ग्रामीण—"बहनजी, मैं अभी बच्चे को वहीं ले जाऊंगा।"

मैं—"परमात्मा करे, तुम्हारा बच्चा अच्छा हो जाय।"

: ८ :

अंध-विद्यालय

मैं—"अरे शिशिर, आज तू जल्दी कैसे आ गया स्कूल से? अभी तो तीन भी नहीं बजे। तेरी छुट्टी तो चार बजे होती है न?"

शिशिर—"हां अम्मा, आज हमारे स्कूल में टीका लगा था, इसलिए जल्दी छुट्टी हो गई।"

मैं—"टीका! कैसा टीका?"

शिशिर—"चेचक का टीका, अम्मा।"

मैं—"ओह! हां, ठीक है, दिल्ली में चेचक बहुत फैल रही है, कल ही तो अखबार में पढ़ा था।"

शिशिर—"अम्मा, सुना है चेचक में आंखें जाती रहती हैं?"

मैं—"नहीं बेटा! सबकी नहीं, पर जिनके बहुत जोर की निकलती है, और ठीक से देखभाल नहीं होती, उनमें बहुतों की जाती रहती हैं।"

शिशिर—"तो क्या जितने अंधे हैं, वे सब चेचक के रोग में ही अंधे हुए हैं?"

मैं—"नहीं, कुछ जन्म से ही अंधे होते हैं। कुछ की आंखें जब बहुत जोर से दुखनी आती है और इलाज ठीक से नहीं हो पाता तो जाती रहती हैं, या कोई और रोग हो जाय तो आंखों की ज्योति चली जाती है।"

शिशिर—"हाय अम्मा, वे बेचारे कैसे अपनी ज़िंदगी काटते होंगे ?"

शरत—"बहुत-से अंधे आदमी भीख मांगने लगते है ?"

मैं—"हां ! जब बचपन में ही किसी अंधे बालक की परवाह न की जाय, तो बाद में भीख मागने के सिवा उनके पास कोई चारा ही नही रह जाता।"

शरत—"परवाह से क्या मतलब ?"

मैं—"परवाह से मतलब यही कि यदि उन्हे किसी प्रकार का प्रशिक्षण न दिया जाय तो उनके पास रोज़ी का साधन ही क्या रह जाता है ?"

शिशिर—"क्या अंधे आदमियों को भी किसी प्रकार का प्रशिक्षण दिया जा सकता है ?"

मैं—"हां, क्यो नही ? अंधों के कान की शक्ति और छूने की शक्ति बहुत तेज होती है। हम आंखों से देखकर सबकुछ समझने-बूझने मे जो शक्ति लगाते है, वही शक्ति ये वस्तुओं को छूने और सुनने में खर्च करते है, इसलिए इनकी ये दो इंद्रियां बहुत ही तीव्र हो जाती है।"

हेमन्त—"तो इन्हे प्रशिक्षण कौन देता है ?"

मैं—"कुछ समाज-सेवियों ने, सरकार ने और दूसरी संस्थाओं ने ऐसे स्कूल खोल रखे हैं जहां संगीत, कुछ हाथ का काम और कुछ पढना-लिखना सिखाया जाता है।"

शिशिर—"हां, हमें याद है, हम पिछले साल जब एक सांस्कृतिक कार्यक्रम देखने गये थे तो सबसे पहले अंधे छात्रों ने मिलकर वाद्य-वृंद प्रस्तुत किया था। हम तो सभी सोच रहे थे कि अंधे कैसे इतना अच्छा बजा लेते है।"

अन्धे छात्रों द्वारा वाद्यवृन्द

मैं—"हर अंध-विद्यालय मे हर छात्र को सगीत विद्या अवश्य दी जाती है, क्योंकि इनके कान बहुत तेज होते हैं। और यह तो तुम समझते ही हो कि सगीत आखो की नही, बल्कि कानो की चीज है।"

शिशिर—"और तुम कहती थी कि उन्हे पढाया भी जाता है, सो कैसे ? उसमे तो आखो के बिना काम नही चलता।"

मैं—"बेटे, उन्हे *शिक्षा की सामान्य पद्धति द्वारा नही* पढाते। उन्हे जिस पद्धति से पढाया जाता है वह 'ब्रेल-पद्धति' कहलाती है। उसमे आखो के बिना भी निर्वाह हो जाता है।"

हेमत—"वह क्या होती है ?"

मैं—"कागज पर उभरे हुए अक्षरो को 'ब्रेल-पद्धति' कहते है। जिस प्रकार हम अपनी दृष्टि से जल्दी-जल्दी अक्षरों को पहचान जाते है उसी प्रकार वे हाथ लगाते ही स्पर्श से झट अक्षरो को पहचान जाते है।"

शरत—"इस पद्धति से वे कहातक पढ लेते है ?"

मैं—"दिल्ली के पास बदरपुर गाव है। वहा जो अध-विद्यालय है, उसमें ब्रेल-पद्धति से आठवी तक सब छात्रों को अवश्य पढाया जाता है। सबको सगीत की शिक्षा भी अवश्य मिलती है।

इनमें से कुछ छात्र बाद में जाकर बहुत अच्छे संगीतज्ञ बन जाते हैं और संगीत सिखाकर अपनी जीविका कमाते हैं।"

शिशिर—"जो लोग बहुत अच्छा संगीत नहीं सीख पाते वे बिचारे कहाँ भटकते हैं?"

मैं—"वे भटकेंगे क्यों? उनके लिए और बहुत-से उद्योग हैं।"

हेमंत—"जैसे?"

मैं—"जैसे बेंत की कुर्सी बुनना, टोकरी बुनना, कपड़ा, दरी, निवाड़, कालीन इत्यादि बुनना, बढ़ई का काम, चमड़े का काम और दर्जी का काम करना।"

शिशिर—"सच अम्मा? क्या अंधे दरी और कालीन भी बुन सकते हैं?"

उद्योग शिक्षा

मैं—"हां, स्पर्श से वे ताना-बाना बुनना सब सीख जाते हैं। अलग-अलग रंगों के धागे अलग-अलग डब्बों में रखे होते हैं, उन डब्बों पर उभरे हुए अक्षरों द्वारा रंग का नाम लिखा होता है। बस वे हिसाब से उसी रंग का धागा निकालते जाते हैं और बुनते जाते हैं। पहले वे कागज पर उभरा हुआ डिजाइन बनाकर याद कर लेते हैं कि जैसा डिजाइन बनाना है।"

शरत—"और जब दरी और कालीन वे बुन सकते हैं तो बेंत की कुर्सी बुनने में तो कोई मुश्किल है ही नहीं।"

मैं—"इसी तरह स्पर्श से वे चमड़े का काम, दर्जी का काम और बढ़ई का काम भी कर लेते हैं। जिस काम पर वे बैठ जाते हैं उसे बड़ी लगन से और ध्यान से करते हैं। काम में बड़ी सफाई आती है।"

शिशिर—"जब ये काम सीख जाते हैं तब कहां जाते हैं, आर्डर लाने और काम ले जाने का काम कौन करता है?"

मैं—"जितने दिन ये स्कूल में प्रशिक्षण प्राप्त करते हैं, उतने दिन इनके किये हुए काम पर से जो आमदनी होती जाती है, उसमें से एक-चौथाई उस छात्र को दे दी जाती है। जब छात्र उस स्कूल को छोड़ता है तो उसे वह पूंजी मिल जाती है।"

हेमंत—"उस पूंजी का वह क्या करता है?"

मैं—"उस पूंजी से वह बुनाई का सामान या बुनाई की मशीन खरीद लेता है। स्कूल के जरिए किसी व्यापारी से बातचीत कर लेता है, अपना बनाया हुआ माल उसे ले जाकर दे देता है और मजदूरी उसे मिल जाती है।"

शिशिर—"इस समय भारत में कुल कितने अंध-विद्यालय होंगे?"

मैं—"भारत में इस समय तिहत्तर ऐसे स्कूल हैं।"

शरत—"उनमें कितने बालक होंगे ?"

मैं—"उनमें लगभग तीन हजार ऐसे बालक व बालिकाएं होंगी।"

हेमन—"अच्छा अम्मा, एक बात बताओ। जो बच्चे दिल्ली में नहीं रहते, कहीं गांव में रहते हैं, वे कैसे स्कूल आते-जाते होंगे।"

मैं—"देखो, हर अन्ध-विद्यालय के साथ-साथ उस विद्यालय का होस्टल भी रहता है, जहां छात्र रहते हैं और उनके खाने-पीने का प्रबंध भी स्कूल की ओर से ही होता है। मुफ्त'

शरत—"फिर तो कोई कठिनाई की बात नहीं है।"

मैं—"हां, वहीं रहना और वहीं काम-काज सीखना,,

शिशिर—"अच्छा इनका खर्च कहां से निकलता है?"

मैं—"कुछ सरकार देती है, कुछ दान और चंदा जमा किया जाता है।"

शिशिर—"यह तो हुआ अंधों के लिए। जो गूंगे और बहरे होते हैं, उनकी शिक्षा-दीक्षा का भी कोई प्रबंध है क्या ?"

मैं—"हां, है। है क्यों नहीं ?"

शिशिर—"क्या ?"

मैं—"देखो अब देर हो रही है। तुम्हें अपने स्कूल का काम करना है, इसलिए गूंगे-बहरों के स्कूल के बारे में कल बताऊंगी।"

: ९ :

गूंगे-बहरों का स्कूल

शिशिर—"अम्मा, एक बात बताओ।"

मैं—"क्या ?"

शिशिर—"फिरोज़ शा कोटला के पीछे जो एक बड़ा-सा स्कूल है, वह कौन-सा स्कूल है ?"

मैं—"वह गूंगे-बहरों का स्कूल है। उसका नाम है लेडी नोयस स्कूल।"

शिशिर—"उस स्कूल में क्या होता है ?"

मैं—"वहां गूंगों और बहरों को पढ़ना-लिखना सिखाया जाता है।"

शिशिर—"भला गूंगे और बहरे कैसे पढ़-लिख सकते हैं ? वे न तो कुछ सुन ही सकते हैं, न बोल ही सकते हैं।"

मैं—"इसलिए उन्हें पहले बोलना सिखाया जाता है, ओठों व जिह्वा की गति से दूसरे के बोल पहचानना सिखाया जाता है, उसके बाद उन्हें पढ़ना-लिखना सिखाया जाता है।"

शरत—"क्या वे सीख जाते हैं ?"

मैं—"हां, पढ़ना, लिखना और हाथ के काम सब सीख जाते हैं। इतना अवश्य है कि किसीको अधिक सफलता मिलती है किसीको कम।"

शरत—"जनम के गूंगे-बहरों को बोलना कैसे सिखाते हैं?"

मैं—"ऐसे। मास्टर 'अ' कापी पर लिखता है। फिर उसे बोलता है और गूंगे बच्चे का हाथ अपने कंठ पर रख लेता है। बच्चा उसकी जिह्वा, ओंठ को देखकर और कंठ के कंपन को अनुभव करके वैसा ही स्वर अपने कंठ से निकालने का प्रयत्न करता है।"

शिशिर—"फिर क्या वह 'अ' बोलने लगता है?"

मैं—"हां, जब मास्टर बार-बार दोहराता है तो बच्चा भी बोलने लगता है।"

शिशिर—"क्या कंठ पर हाथ रखने से सब अक्षर आ जाते हैं?"

मैं—"नहीं, केवल कंठ पर ही नहीं, बल्कि उसके हाथ मास्टर अपने गालों पर भी रखता है। मुंह के आगे रखता है, नाक के नथुने पर रखता है, ताकि वह गालों का हिलना समझ सके। स्वर निकालते समय मुंह से कैसे हवा निकलती है, उसको जान सके। नाक से निकलनेवाले स्वर नथुनों की हरकत से मालूम हो जाते हैं।

शिशिर—फिर वे ठीक-ठीक बोलने लगते हैं?"

मैं—"हां, बोलने लगते हैं।"

शरत—"क्या फिर कुछ भी समझाने के लिए हर बार मास्टर को बच्चे के हाथ अपने मुंह पर रखने पड़ते हैं?"

मैं—"नहीं, हमेशा नहीं। शुरू-शुरू में सिखाने के लिए ही यह प्रयोग करना पड़ता है। बाद में तो बच्चों को इतना अभ्यास हो जाता है कि वे दूर बैठे ही मास्टर के मुंह के हिलने से उसकी सारी बात समझ लेते हैं।"

शिशिर—"फिर पढ़ना-लिखना कैसे सीख जाता है?"

मैं—"गूंगे-बहरे की स्मरण-शक्ति बहुत तीव्र होती है। इसलिए 'अ' बोलने के साथ-साथ कापी पर 'अ' लिखा देख लेता है तो उसे वह लिख भी सकता है और पढ़ भी सकता है।"

शरत—"क्या इसी प्रकार वह आगे पढ़ना-लिखना सीखता जाता है?"

मैं—"हां! उसकी अपनी कोई भाषा नहीं होती। वह जनम से बहरा होने के कारण कोई भी बोली नहीं जानता, अतः उसे चित्र दिखाकर और बोलकर, पढ़ाकर, सबकुछ समझाते हैं। उसे कहानियां समझाने के लिए दृश्यों के कई-कई चित्र बनाने पड़ते हैं और चित्रों के द्वारा उसे जानवरों के नाम, चीजों के नाम, फल और सब्जियों के नाम बताये जाते हैं।"

शिशिर—"वहां कितने साल का पाठ्य-क्रम होता है?"

मैं—"वहां पांच साल का पाठ्य-क्रम होता है।"

शिशिर—"इसके बाद?"

मैं—"इसके बाद उसे और स्कूलों की पहली-दूसरी कक्षा की तैयारी कराई जाती है।"

शरत—"पांच साल के बाद भी बच्चा पहली में ही रह जाता है!"

मैं—"हां, पांच साल में वह ठीक से बोलना, लिखना, पढ़ना और समझना ही सीख पाता है। इसमें बहुत धीरज की जरूरत है। मास्टर भी कई-कई दिन की कोशिश के बाद बच्चे को एक स्वर ही सिखा पाता है। और बच्चे को भी अपने कंठ से स्वर निकालने के लिए बहुत कोशिश करनी पड़ती है।"

मैं—"पढ़ना-लिखना आने के बाद उन्हें चित्र बनाना, हिसाब लगाना, हिंदी का थोड़ा-बहुत व्याकरण सिखाया जाता है।"

दस्तकारी

हेमंत—"उन्हे हाथ का काम क्या-क्या सिखाते हैं ?"

मैं—"बढ़ईगिरी, दरजीगिरी, बेंत का काम, खड्डी पर कपड़ा बुनना, मशीनों पर सूत कातना और मशीन से बनियान और मोजे बुनना।"

शिशिर—"हाथ का काम करने के लिए कितना समय रोज देते हैं ?"

मैं—"दो घंटे।"

शरत—"हर बच्चे को हर चीज सिखाई जाती है या एक-दो चीजें ?"

मैं—"एक बच्चे को दो काम ही सिखाये जाते हैं। जो बालक जिन कामों में रुचि दिखाता है, उसे वे ही दो चीजें सिखाई जाती हैं। इन कामों के सिखाने से वे आत्म-निर्भर हो जाते हैं।"

शिशिर—"अच्छा, इनके ऊपर कितना खर्च आ जाता है ?"

मैं—स्कूल में कोई फीस नहीं लगती। स्कूल के साथ छात्रावास भी है। वह भी मुफ्त। गरीब और अमीर दोनों खर्च की तरफ से बेफिकर हो अपने बच्चे यहां दाखिल कर सकते हैं।"

हेमन्त—"इन्हें कहीं घुमाने भी ले जाते हैं?"

मैं—"हां, उन्हें बाहर ले जाकर चीजें दिखाते हैं और वे उन्हें देखकर जल्दी समझ जाते हैं।"

दस्तकारी

हेमत—"उन्हे हाथ का काम क्या-क्या सिखाते हैं?"

मैं—"बढ़ईगिरी, दरजीगिरी, बेंत का काम, खड्डी पर कपड़ा बुनना, मशीनो पर सूत कातना और मशीन से बनियान और मोजे बुनना।"

शिशिर—"हाथ का काम करने के लिए कितना समय रोज देते हैं?"

मैं—"दो घंटे।"

शरत—"हर बच्चे को हर चीज सिखाई जाती है या एक-दो चीजें?"

मैं—"एक बच्चे को दो काम ही सिखाये जाते हैं। जो बालक जिन कामों में रुचि दिखाता है, उसे वे ही दो चीजें सिखाई जाती हैं। इन कामों के सिखाने से वे आत्म-निर्भर हो जाते हैं।"

शिशिर—"अच्छा, इनके ऊपर कितना खर्च आ जाता है?"

मैं—स्कूल में कोई फीस नहीं लगती। स्कूल के साथ छात्रावास भी है। वह भी मुफ्त। गरीब और अमीर दोनों खर्च की तरफ से बेफिक्र हो अपने बच्चे यहां दाखिल कर सकते हैं।"

हेमंत—"इन्हें कहीं घुमाने भी ले जाते हैं?"

मैं—"हां, उन्हें बाहर ले जाकर चीजें दिखाते हैं और वे उन्हें देखकर जल्दी समझ जाते हैं।"

: १० :

परित्यक्त शिशु-गृह

प्रातः आंख खुली तो देखा, बाहर खूब हो-हल्ला हो रहा था कई मर्द-औरतें जमा थे। कोई कुछ कह रहा था, कोई कुछ। सब बीच में साइकिल की एक टोकरी रखी थी, जिसमें से एक शिशु क धीमा रुदन उठ रहा था। सड़क की जमादारिन हाथ मट मटकाकर चिल्ला रही थी, "यह देखो किसी कुल्टा के काम किसीके पाप की कमाई।"

मैं—"इतना चिल्ला क्यों रही है? आखिर ऐसा हो क गया है? किसका बच्चा है यह?"

जमादारिन—"लो, सुन लो। मैं भला क्या जानूं, किस बच्चा है?"

मैं—"जब तुझे नहीं मालूम तो क्यों उसे गाली दे रही है?

जमादारिन—"लो और सुन लो। पाप की कमाई नहीं हो तो कोई उसे यों सड़क पर छोड़ देता?"

एक आदमी—"कहां पाया तूने इसे?"

जमादारिन—"मैं तड़के ही सड़क बुहार रही थी तो इ फसील के पास इस टोकरी को पड़े देखा।"

दूसरा आदमी—"फिर?"

जमादारिन—"फिर क्या, मैंने सोचा, कोई आदमी य आसपास कुछ काम कर रहा होगा, थोड़ी देर में आकर उठा जायगा।"

मैं—"कोई आया ?"

जमादारिन—"नही बीबीजी, आधा घटा बीता, एक घंटा बीता, पर कोई न आया। यह सुदर-सी नई टोकरी देखकर मुझे भी कुछ शक होने लगा।"

एक आदमी—"फिर ?"

जमादारिन—"इतने मे टोकरी में से रोने की आवाज आने लगी। मेरा बडा मन करने लगा कि इसे खोलकर देखूं।"

मैं—"खोला क्यों नही ?"

जमादारिन—"कैसे खोल लेती, बीबीजी, कोई कह देता कि मै ही किसीकी चोरी कर लाई हू, या किसीने मेरे जरिये ही यह काम कराया है तो क्या होता ? किसीका मुह थोडे ही रोक सकती हूं।"

एक आदमी—"फिर क्या हुआ ?"

जमादारिन—"फिर क्या ? दो-चार आदमियों को जमा किया। उनके सामने टोकरी खोली तो उसमे यह निकला।"

दूसरा आदमी—"कितना सुदर बच्चा है यह। जाने मां का कैसे दिल किया होगा, उसको छोडते हुए।"

मैं—"जीहा, सुदर तो है यह, पर नही छोडती तो क्या समाज उसे छोडता ? अब तो बस बच्चे की हो मुसीबत है, और तब बच्चे और बच्चे की मा, दोनो की ही मुसीबत रहती।"

दूसरा आदमी—"हा, तुम ठीक कहती हो ? इस बिचारे बच्चे को पैदा करने में तो स्त्री और पुरुष दोनो का ही हाथ रहा होगा, पर गाली खानी पड़ती बिचारी स्त्री को। सब कहते, कुल में दाग लगा दिया। कुलटा है। कुलच्छिनी है। शायद उसे घर से भी निकाल दिया जाता।"

इंतजाम कर देती। हम भी जानें कि बहुत दया है आपके दिल में।"

मैं—"ठीक है। मैं इसका इंतजाम कर दूंगी। चल री जमादारिन जरा इस बच्चे को लेकर मेरे साथ चल।"

जमादारिन—"कहा ले चलोगी?"

नहाने का आनंद

मैं—"मूनिदेवी हस्पताल म।"

एक आदमी—"वहा क्या होता है?"

मैं—"वहा इसे पाला जायगा।"

जमादारिन—"सच, बीबीजी? इस बालक का कोई ठिकाना लग जाय तो मैं जरूर साथ जाऊंगी।"

दूसरा आदमी—"लेकिन हस्पताल में इसे कौन पालेगा? नर्स? अगर उसने भी इसकी जिम्मेदारी नही ली तो?"

मैं—"वहा नगर-निगम ने ऐसे बच्चों के लिए विशेष प्रबंध कर रखा है। वहा ऐसे बच्चों के लिए हस्पताल में एक-दो कमरे हैं। उनमें बच्चों के लिए बहुत सारे पालने हैं। कई नर्सें वारी-वारी से इनकी देखभाल करती हैं और नहलाती-धुलाती हैं।

जमादारिन—"बीबीजी, उन्हें दूध कौन देता है?"

मैं—"समय पर वही नर्सें दूध भी देती हैं। कपड़ों, दवा-दारू, नर्सों आदि के साथ-साथ हस्पताल का भी सारा खर्चा नगर-निगम उठाता है।"

एक औरत—"बच्चे कबतक वहा रहते है ? बड़े होकर कहा चले जाते हैं ?"

मैं—"वहा बच्चों को गोद दे देते है।"

औरत—"इन्हें कौन गोद लेता होगा ?"

मैं—"बहुत-से ऐसे आदमी होते हैं, जिनमें दया, माया, ममता होती है। उनके जब अपने बच्चे नही होते तो वे यहां से गोद ले लेते है।"

एक आदमी—"यों तो कोई भी इन बच्चों को ले जाता होगा ?"

मैं—"जी नही, हरेक आदमी को नही देते। गोद लेनेवाला अच्छी आमदनीवाला, अच्छे कुल का और सच्चरित्र होना चाहिए। जो गोद लेना चाहता है, वह पहले दो रुपये के टिकट लगे हुए फार्म पर, मजिस्ट्रेट के हस्ताक्षर करवाकर, निगम के अध्यक्ष के पास आवेदन भेजता है। यदि उसकी आमदनी लगभग तीससौ रुपये से कम न हो, उसके पहले कोई बच्चा न हुआ हो और आगे भी बच्चा होने की संभावना न हो तो फिर उसकी जांच करवाई जाती है।"

एक आदमी—"अगर जांच ठीक निकले तो ?"

मैं—"तो उसे सब बच्चे दिखा दिये जाते हैं। उनमें से जो उसे पसंद आ जाता है उसे वह दे दिया जाता है, बकायदा लिखत-पढत करके।"

दूसरा आदमी—"गोद लेनेवाले बहुत आते है या थोड़े ?"

मैं—"मागनेवाले तो इतने आते हैं कि उन्हें प्रतीक्षा करनी पड़ती है। प्रतीक्षा करनेवालों की सूची पर कितने ही नाम चढ़े

रहते है। जैसे ही कोई लडका आता है, फौरन किसी-न-किसीकी गोद चला जाता है।"

औरत—"और लडकी ?"

मै—"लडकी को मागनेवाले जरा कम आते है। लडकी तो वहा एक-एक साल की हो जाती है। एक लड़की तो वहा ढाई साल की थी। पर अब वह भी चली गई।"

दूसरी औरत—"बच्चा डालनेवाली से सब पूछताछ की जाती होगी। क्या वह सब बता देती है ?"

मै—"नही, न वह बताती है और न कोई उससे कुछ पूछता है।"

एक आदमी—"तो फिर ? आखिर वह किसीको तो बच्चा सौपती ही होगी ?"

मै—"नही, अस्पताल के बाहर आल्मारी मे एक पालना बना रखा है। उसमे एक तार जोड रखा है, जो अदर लगी हुई घटी से जुडा हुआ है।

एक औरत—"फिर ?"

मै—"फिर क्या ? लानेवाले आदमी बच्चे को उस पालने मे डाल देते है। पालने पर बोझ पडते ही घंटी बज उठती है और अदर से डाक्टर आकर बच्चे को उठा ले जाती है।"

एक आदमी—"यह तो नगर-निगम ने बहुत अच्छा किया। न जाने कितनी हत्याए इससे बच गई।"

जमादारिन—"चलो, बीबीजी, देर हो रही है। बच्चा रोने लगा है। मुझे भी काम करना है।"

: ११ :

अविवाहित माता-गृह

एक महिला—"अरी सुनती हो?"

मैं—"क्या ?"

महिला—"आज जब हम बस में से जी० बी० रोड से गुजर थे तो हमने भागो को कोठे पर देखा।"

मैं—"कौन भागो ?"

महिला—"वही, कोनेवाले मकानवालों की दूसरी की।"

मैं—"अच्छा, वह, जिसे गर्भ रह गया था ?

महिला—"हां-हां, वही जो कुंआरेपन मे गर्भवती ई थी।"

मैं—"तो बहन, ऐसी लडकियों के मां-बाप को सोचना हिए था कि हम लड़की को घर से निकाल रहे हैं तो आखिर वह यगी कहा ? पढी-लिखी वह थी नही कि कही नौकरी करके ना पेट भर लेती !"

महिला—"कही चौका-बरतन ही कर लेती !"

मैं—"पर वह रहती कहा ! जहा भी अकेली रहती, सब उसे छेड़ते। गुंडों और अवारा लोगों की कमी नही है ! टी उमर की, बिना पढी-लिखी, देखने मे सुदर, भला कौन उसे ड़ता !"

महिला—"तो उसने ऐसा किया ही क्यो ? यह कुकर्म न ती।"

मैं—"भला तुम्ही बताओ, जब मां-बाप की रक्षा में रहनेवाली को बदमाश ने नहीं छोड़ा तो अकेली को छोड़ देता ?"

महिला—"पुरुष को ही बदमाश क्यों कह रही हो ? क्या पता, इसीका दोष हो ?"

मैं—"अगर वह बदमाश न होता तो जब इसके मां-बाप ने इसे निकाल दिया था तो उसे चाहिए था कि इसके रहने का प्रबंध करता, इससे ब्याह करता, और ब्याहता स्त्री की तरह इसका सम्मान करता।"

महिला—"तो बहन, मां-बाप भी क्या करते ? उन्हें भी तो अपनी इज्जत बचानी थी।"

मैं—"अब क्या इज्जत बच गई ? अब तो और डूब गई।"

महिला—"तो आखिर वे करते क्या ? कुछ तुम भी तो बताओ कि उनके पास उपाय ही क्या रह गया था।"

मैं—"किसी डाक्टर से सलाह लेनी थी।"

महिला—"हाय-हाय, ऐसा पाप ? गर्भ गिरवा देती ? हत्या करती ?"

मैं—"तब जिंदगी में एक की हत्या होती, अब वह रोज एक गिरती होगी ? तुम्हे पता है ?"

महिला—"हां, यह तो ठीक कहा ! पर उसका तो पता ही बहुत देर से लगा ? पूरे छ महीने चढ़ गये थे।"

मैं—"सबसे पहले तो उन्हें लड़के की खोज करनी चाहिए थी। अगर वह लड़का, जिसका यह काम है, अच्छा हो, योग्य हो तो दोनों का ब्याह देना चाहिए था। एक साल के लिए कहीं बाहर रह आती, दूर मोहल्ले में मकान ले लेती तो किसीको

पता भी न चलता कि शादी और बच्चे के जनम के बीच कितने दिन गुजरे !"

महिला—"तुम्हें तो मालूम है कि यह कांड बग़लवालों के ड्राइवर ने किया था। भला वे इतने बड़े आदमी, ड्राइवर के साथ कैसे ब्याह देते ?"

मैं—"ठीक, तो ऐसे में दो तरीके हैं।"

महिला—"क्या ?"

मैं—"अगर उसके मां-बाप उसे कहीं दूर कुछ दिन के लिए रख सकते, तो बच्चा हो जाने पर उसे परित्यक्त शिशु-गृह में डाल आते, और लड़की को स्वस्थ होने पर घर ले आते।"

महिला—"परित्यक्त शिशु-गृह कौन-सा है ?"

मैं—"वही, जिसके बारे में उस दिन मैं बता रही थी।"

महिला—"किस दिन ?"

मैं—"अरे, जब जमादारिन को दीवार के पास टोकरी में एक बच्चा पड़ा मिला था !"

महिला—"हां-हां, याद आया, मूर्तिदेवी अस्पताल, वहीं दिल्ली गेट के पास।"

मैं—"हां-हां, वही।"

महिला—"हां, यह भी हो सकता था कि मां-बेटी तीन-चार महीनों के लिए कहीं बाहर चली जातीं और बच्चा पैदा होने पर परित्यक्त शिशु-गृह में डाल आतीं। बच्चा पल जाता, किसी अच्छे घराने में गोद चला जाता और किसीको कानों-कान इसका पता भी न चलता।"

मैं—"हां, देखो ना, उसे वेश्या बनाने की बजाय तो

वही अच्छा था। उनकी नाक भी बनी रहती, लड़की भी न बिगड़ती। बाद मे जल्दी-से-जल्दी योग्य वर ढूढकर लडकी की शादी कर देनी चाहिए थी।"

महिला—"लेकिन इसकी मा के तो कई छोटे-छोटे बच्चे है। वह उन्हे कैसे छोडकर कई महीनों के लिए कही चली जाती !"

मै—"तो फिर उन्हे चाहिए था कि लडकी को बबई भेज देते।"

महिला—"बबई ! वहा क्या होना है ?"

मै—"वहा एक ऐसा केंद्र है, जिसमे बच्चा होने के समय तक लडकी को रखते है।"

महिला—"अच्छा ! जबसे लडकी को गर्भाधान के लक्षण नजर आते है तबसे लेकर बच्चे के होने तक के समय के लिए वह वही रहती है ! क्या यह सच है ?"

मै—"हा, यह बिलकुल सच है ! नासमझ भोली-भाली बालिकाओ के कल्याण के लिए और समाज के अत्याचार से उन्हे बचाने के लिए यह केद्र खोला गया है।

महिला—"लेकिन वहा बाद मे बच्चे का क्या होता है ? जनम देनेवाली मा तो उसे अपने साथ लाती नहीं।"

मै—"नही, वहा दाखिल होने से पहले गर्भवती लड़की से एक फार्म पर दस्तखत करवा लेते है कि वह बच्चे से बाद मे कोई सरोकार नही रखेगी। उसके मामलो मे कोई हस्तक्षेप नही करेगी।"

महिला—"तो क्या वह उसे वहा छोड देती है ?"

मै—"हा, फिर बच्चे को किसी अच्छे घराने मे गोद दे दिया जाता है।"

महिला—"क्या उसे छोडते समय मा के दिल मे ममता नही

होती ?"

मैं—"ममता होती है, अगर मा एक बार बच्चे को देख ले तो। बिना देखे उतनी अधिक ममता नही होती।"

महिला—"तो, वे लोग क्या करते है ?"

मैं—"वे बच्चे को पैदा होते ही अलग कर देते है। उसे मा को दिखाते नहीं।"

महिला—"अच्छा ! मा को उसे दिखाते ही नहीं ! हा, यह ठीक है। फिर ?"

मैं—"फिर स्वस्थ होने पर मा अपने मां-बाप के पास चली जाती है।"

महिला—"लेकिन जो लडकियां बच्चे को अलग करना नही चाहती, उनका क्या होता है ?"

मैं—"वे फिर अधिकारियों से प्रार्थना करती हैं कि कुछ दिन के लिए वे बच्चे को पाल ले, बाद मे वह कोई प्रबंध कर लेगी।"

महिला—"प्रबध क्या कर लेगी ? कैसे कर लेगी ?"

मैं—"उसके घर मे कोई रिश्तेदार विवाह के बाद भी बिना बच्चे का हो तो वे उस बच्चे को गोद ले लेते है। इस प्रकार घर का बच्चा घर में ही रहता है और मां-बाप की इज्जत में बट्टा भी नही लगता।"

महिला—"भई, यह तो बहुत अच्छी बात सुनाई तुमने। अब अगर कही हम ऐसी बात देखेंगे तो मा-बाप को यही सलाह देगें कि लड़की को बाजारू औरत बनाने की बजाय अविवाहित माता-गृह में ले जाय। लेकिन जिनके मा-बाप बहुत कट्टर हों और लडकी को घर में रखना पाप समझे तो ?"

मैं—"तो ऐसी लडकियों को वही बच्चे के साथ रख लेते है। उसे कुछ काम-काज सिखाकर कही काम पर लगाने की कोशिश करते है। कुछ पढा भी देते है। मतलब यह कि उसे जिंदगी काटने का सहारा दे देते है।"

महिला—"और जो लडकी बहुत चंचल हो, ब्याह करके गृहस्थी जमाना चाहे तो ऐसी लडकियो का क्या करते है ?"

मैं—"ऐसी लडकियो के लिए यदि योग्य वर मिल जाय, जो ऐसी लडकी से ब्याह करना बुरा न माने तो उसे ब्याह भी देते है।"

महिला—"यह तो और भी अच्छा है। वह भले घरो की तरह घर बसा सकती है। इज्जत के साथ रह सकती है।"

मैं—"अच्छा बहन, अब चले। देर हो रही है।"

: १२ :

नारी-निकेतन

सिन—"नमस्ते बहन। कल तुमने मुझे इतनी बातें र में एक बात पूछना भूल गई।"

-"वह क्या?"

सिन—"यही कि भागो को कीचड़ से निकालने का अब र है? समाज की गलतियों के कारण क्या वह सारी के कीड़े की तरह गंदगी में पड़ी रहेगी? पिछले कर्मों । भोग रही है और अब के कर्मों का आगे पता नहीं, भोगेगी?"

-"उपाय तो है। हर भूल को सुधारने का उपाय होता बड़ी भूलें सुधर जाती हैं। भागो जैसी गलती तो अक्सर जवानी में कर बैठती है। उसको और अधिक बिगा- सुधारना उसके मां-बाप और समाज के हाथ में है।"

सेन—"तो फिर बताओ अब वह क्या करे? कहा

-"देखो, सरकार ने ऐसी बहनों के कल्याण के लिए केतन' खोल रखे हैं।"

सेन—"वहां क्या होता है?"

-"सोलह वर्ष से छोटी आयु की किसी लड़की को वेश्या करने की इजाजत नहीं है। पर जो लड़कियां गुंडों के आकर घर से भाग गई होती हैं और इस दलदल में

आ फंसती है, तो सरकार उन्हें लाकर यहां रखती है।"

पड़ोसिन—"यहां वे क्या करती हैं ? कबतक रहती हैं ?"

मैं—"पहले तो सरकार उनके घर का पता पूछकर उनके मां-बाप को सूचना देती है। यदि-मां बाप उसे अपने घर रखने को राजी हो जाय तब तो ठीक, नहीं तो सरकार उन्हें वहीं नारी-निकेतन, में रखती है।"

पड़ोसिन—"अच्छा ! क्या ऐसी लड़कियों को उनके मां-बाप अपने घर में स्थान दे देते हैं ?"

मैं—"हां, बहुत-से उदार और दयावान लोग जब यह देखते हैं कि बेचारी लड़की बहुत दुखी है और गुंडों के बहकावे में

स्वावलम्बन की ओर

आ गई थी, तो वे उसे अपने घर में रख भी लेते हैं और फिर जल्दी-से-जल्दी उसका विवाह कर देने की कोशिश करते हैं।"

पड़ोसिन—"नहीं तो फिर सरकार उन्हें कब तक रखती है और उनसे क्या करवाती है?"

मैं—"सरकार उन्हें कुछ हाथ का काम सिखाती है। सिलाई कढ़ाई, बुनना, अथवा चर्खा चलाना।"

पड़ोसिन—"अच्छा, अब समझी। ये सब चीजें इसलिए सिखाते हैं, जिससे वे कुछ कमाने योग्य हो जायं।"

मैं—"हां, ऐसे काम जिनसे वे प्रतिष्ठा और सम्मान के साथ कमाई कर सकें। इनके अलावा उन्हें थोड़ा-थोड़ा पढ़ना-लिखना भी सिखाया जाता है। सफाई रखना, खाना बनाना, अचार, मुरब्बे डालना, खाने की चीजों को हवा-बंद डिब्बों में बंद करना, निवाड़ और दरी बुनना, साबुन बनाना, बटुए बनाना, थैले बनाना, ऐसे बहुत-से काम सिखाये जाते हैं। मिट्टी के बर्तनों पर चित्रकारी करना, खिलौने बनाना जैसे कलात्मक कार्य करके उनको बड़ा आनंद अनुभव होता है, साथ ही पैसे बन जाते हैं।

पड़ोसिन—"हां, इन सब कामों के जरिए तो वे अपनी गुजर-बसर के लायक कमा ही सकती हैं।"

मैं—"इसके अलावा उन्हें वेश्यावृत्ति की बुराइयां बताई जाती हैं। कथा-कहानियों, नाटकों, सिनेमा द्वारा उनका नैतिक स्तर भी ऊंचा उठाने की कोशिश करते हैं।"

पड़ोसिन—"हां, ठीक है, इससे उनका [illegible] बदल ही जाता है और उनके मन के भाव भी [illegible]।"

मैं—"इसके बाद [illegible] [illegible] ऐसा [illegible] आगे के [illegible]

मेहनत करके कमायेंगी या फिर शादी करके गृहस्थ की तरह रहेंगी।"

पड़ोसिन—"लेकिन बहन, उनसे शादी कौन करेगा ?"

मैं—"बहुत-से समाज-सुधारक नारी का उद्धार करने के लिए शादी करने को तैयार हो जाते हैं। जिनकी शादी नहीं होती, वे फिर वहीं निकेतन में काम करती हैं और खाती हैं।"

पड़ोसिन—"उन्हें अपनी बनाई चीज़ बेचने में दिक्कत नहीं होती ?"

मिट्टी के खिलौने बनाने की शिक्षा

मैं—"बहुत-सी लड़कियां तो इतनी आत्म-निर्भर होती हैं कि सबकुछ अपने-आप कर लेती हैं, पर जो स्वावलंबी नहीं हो पाती, उन्हें सरकार सहायता देती है।"

पड़ोसिन—"सरकार क्या उनकी चीजें बिकवा देती है?"

मैं—"हां, सरकार ने कई ऐसे केंद्र खोल रखे हैं जहां चीजें सिखाई भी जाती हैं और आर्डर भी लिये जाते हैं। केंद्र उन लड़कियों से काम कराते हैं और फिर ग्राहकों को चीजें देकर उनसे मजदूरी लेकर लड़कियों को दे देते हैं।"

पड़ोसिन—"जिसे आर्डर देना हो, उसे ही जाना पड़ता है क्या?"

मैं—"कुछ लोग तो वहीं जाकर आर्डर दे आते हैं, बाद में चीजें ले आते हैं। बहुत-सी दुकानें आर्डर दे देती हैं। प्रशिक्षण और उत्पादन-केंद्र के अधिकारी-गण बीच-बीच में दुकानों से संपर्क करते रहते हैं।"

पड़ोसिन—"प्रशिक्षण और उत्पादन-केंद्र क्या होते हैं?"

मैं—"जहां चीजें बनानी सिखाई जायं और साथ में उन्हें बेचने का भी प्रबंध हो उन केंद्रों को 'प्रशिक्षण और उत्पादन-केंद्र' कहते हैं।"

पड़ोसिन—"बहन, जबसे हमारा देश स्वतंत्र हुआ है तबसे हमारी सरकार बालकों और स्त्रियों के कल्याण के लिए बराबर कुछ-न-कुछ कर रही है। सुना है, जब हिंदुस्तान का बंटवारा हुआ तब सरकार ने सैकड़ों सताई हुई स्त्रियों को सहारा दिया था।"

मैं—"हां बहन, वह भी एक दर्दभरी कहानी थी।"

पड़ोसिन—"अच्छा, उनके लिए भी ऐसे ही केंद्र खोले गये

, कैसे ये नारी-निकेतन ? सुना है कि बहुत-सी औरतों को तो
नके आदमियों ने इसलिए साथ नहीं रखा कि वे मुसलमानों के
ाथ रह आई थीं । क्या सरकार ने उनके लिए भी केंद्र खोल
रे हैं ।"

मैं—"हां बहन, सरकार ने उनके लिए बहुत सारे केंद्र खोल
। जिनके पतियों ने उन्हें नहीं रखा, उनके मां-बाप का पता
लगाया, उनसे बातचीत की। कुछके मां-बाप अपनी लड़कियों को
गये, कुछके नहीं ले गये। कुछके संबंधियों का पता ही नहीं चला।"

पड़ोसिन—"वे वहीं केंद्र में रह गई होंगी ?"

मैं—"हां, वे वहीं केंद्र में रह गईं। सरकार पहले तो उन्हें
मुफ्त राशन बांटती रही। बाद में राशन बंद करके, प्रति व्यक्ति
के हिसाब से रुपये देने लगी। उस रुपये से औरतें काम-काज

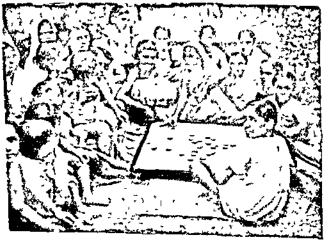

बाल-मनोरंजन

सीखती हैं और अपना गुजारा चलाती हैं।"

पड़ोसिन—"और जिनके बच्चे हैं?"

मैं—"प्रति बच्चे के हिसाब से उन्हें रुपये मिलते हैं औ[illegible] बच्चों के लिए वहां आश्रम खोल दिये गये हैं।"

पड़ोसिन—"सुना है, सरकार ने उनके लिए मकान भी बन[illegible] दिये हैं? क्या यह सच है?"

मैं—"हां, यह सच है। उनके रहने के लिए छोटे-छोटे क्वार्टर बना दिये हैं। जो स्वयं कमा सकती हैं, वे अपने क्वार्टरों में चली गईं। बाकी वहीं केंद्र में रहती हैं।"

पडोसिन—"बहुत-सी लड़कियों को वहा गर्भ रह गया था। उनका क्या हुआ?"

मैं—"उनको पहले तो इन केंद्रों में रखा गया। फिर उचित समय पर अस्पताल की व्यवस्था की गई। बाद में उनको मा-बाप के पास भेज दिया। कुछका विवाह किया, और कुछ वहीं केंद्र में रहने लगी।"

पड़ोसिन—"क्या अस्पताल में उनकी ठीक से देखभाल होती थी? उनका कोई घरवाला तो पास में था नहीं।"

मैं—"घरवाला पास में नहीं था तो क्या हुआ! आजकल अस्पतालों में ऐसी व्यवस्था है कि चाहे जच्चा-बच्चा अकेले रहे, चाहे कोई साथ रहे, उन्हें किसी तरह का कष्ट नहीं होता। सब काम ठीक से हो जाता है। नर्सें होती हैं, लेडी डाक्टर होती हैं, वे सब सम्भाल लेती हैं।"

पड़ोसिन—"खाने की व्यवस्था तो घरवाले ही करते होंगे।"

मैं—"अब बहुत-से अस्पतालों में खाना भी वहीं से मिलता है और कपड़ा और बिस्तरा भी वहीं का इस्तेमाल क[illegible]

है। आशा है कि धीरे-धीरे सारे अस्पतालों में यही व्यवस्था हो जायगी।"

पड़ोसिन—"बहन, अब तो बालकों और माताओं की सुख-सुविधाओं के लिए कितनी तरह की व्यवस्थाएं हो गई हैं। पहले तो अस्पताल के नाम से ही औरतें घबराती थीं।"

मैं—"हां, बहन पर अब वह बात नहीं रही। औरतें और बच्चे समझने लगे हैं कि सरकार जो कुछ कर रही है, उनके भले के लिए है।"

पड़ोसिन—"अब यह सबको जान लेना चाहिए कि अगर जीवन में कभी भूल हो जाय तो सरकार उनकी रक्षा करती है। उन्हें समाज की मार से बचाने के लिए शरण देती है और उन्हें फिर से समाज का एक अंग बनाने की भरसक कोशिश करती है।"

मैं—"अच्छा बहन अब चलूं। अंधेरा हो गया। नमस्ते।"